भगवान महावीर की २५वी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में

जैनधर्म की हजार शिक्षाएँ

सपादक

श्री मधुकर मुनि

प्रकाशक :

मुनि श्री हजारीमल स्मृति-प्रकाशन

ब्यावर

समर्पण

स्व० गुरुदेव श्रद्धेय स्वामी श्री जोरावरमल जी म०
एवं
परम वैराग्यमूर्ति स्व० गुरुभ्राता स्वामी श्री हजारीमल जी म०
तथा
शांतमूर्ति गुरुभ्राता स्वामीजी श्री व्रजलाल जी म०
को;
इन त्रिमूर्ति के कृपा-पूर्ण मार्गदर्शन ने,
मेरे जीवन को सदा सही पथ पर
बढ़ने का संवल दिया,
और
मंगलमय बनाया

—मुनि मधुकर

प्रकाशकीय

जैन-धर्म की हजार शिक्षाए" का प्रकाशन करते हुए अतीव हर्ष हो रहा है। मुनिश्री हजारीमल स्मृति—प्रकाशन का यह प्रकाशन पद्रहवाँ सुरभित सुमन है।

यह सकलन अतीव श्रम-पूर्वक तैयार किया गया है। इसके सकलन मे श्रद्धेय श्री मधुकर मुनिजी को अनेक आगम व ग्रन्थो का अवलोकन करना पडा है।

हमे प्रसन्नता है कि साहित्य व दर्शन के विद्वान श्रीयुत् श्रीचद जी सुराना 'सरस' का सर्वतोमुखी सहयोग मुनिश्रीजी को मिला है। यही कारण है कि अतीव अल्प समय मे यह प्रकाशन सुन्दर रूप मे जन-जन के कर-कमलो मे पहुच पाया है।

अपने मनोमुग्धकारी प्रकाशनो के कारण **'मुनिश्री हजारीमल** स्मृति प्रकाशन' ने अच्छी ख्याति प्राप्त की है। तथा पाठको का स्नेह व आकर्षण भी प्राप्त किया है। हमारे अन्य प्रकाशनो की तरह यह प्रकाशन भी जनता को अधिक रुचिकर होगा—ऐसा हमे पूर्ण विश्वास है।

जिन अर्थ-सहयोगियो ने इस प्रकाशन मे अर्थ-सहयोग दिया है, उनका भी हम आभार मानते है। समय समय पर अर्थ-

अपनी बात !

कुछ वर्ष पूर्व एक समाचार पढा था कि फारस के शाह ने अमीर अफगानिस्तान को 'कुरान-शरीफ' की एक प्रति भेट की है जिसका मूल्य है ३ हजार पौण्ड। वह सोने के पत्रों मे लिखी हुई है उसमें ३९८ रत्न जवाहरात जड़े हुए है—अर्थात् १६८ मोती, १३२ लाले और १०८ हीरे। वह ससार की सबसे मूल्यवान (कीमती) पुस्तक कही जाती है।

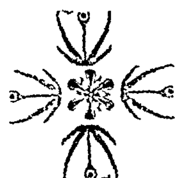
मेरे मन मे आया– भौतिकवादी युग मे अब मनुष्य धर्म और ज्ञान को भी भौतिक-समृद्धि से जीतने का प्रयत्न करने लग गया है। महापुरुषों के उपदेश को भी वह हीरो पन्नो से तोल रहा है और जिसमें ज्यादा हीरे लगे, उस पुस्तक को, साहित्य को ससार कीमती कहने लगा है।

साहित्य का, उपदेशवचन का, हित-शिक्षा का मूल्य हीरो से तोलना सचमुच मे एक मूर्खता है। एक खतरनाक प्रयत्न है। भौतिक वस्तु का कुछ मूल्य होता है, किंतु महापुरुप के सत्वचन तो अमूल्य होते है। एक ही वचन जीवन का, सपूर्ण मानवता का, समस्त विश्व का कल्याण कर सकता है। अणु को महान् वना सकता है, पतित को पावन कर सकता है, और क्या एक ही शिक्षा पर आचरण कर इन्सान भगवान वन सकता है, क्या विश्व के महामूल्यवान किसी भी हीरे-पन्ने मे है यह क्षमता ?

वचनो से समृद्ध है। इस दिशा मे मैने एक चरण आगे बढाया है – आगमो से लेकर अधुनाकाल तक के, इस ढाई हजार वर्ष के प्राकृत-अपभ्रंश एवं संस्कृत वाङ्मय मे विखरे हुए उपदेश प्रधान शिक्षा वचनो का एक सकलन—**जैनधर्म की हजार शिक्षाएं** के रूप मे। सकलन करते समय लगभग १५०० सूक्तियां सकलित हो गई थी, लेकिन चूँकि मैने हजार शिक्षाएँ ही इसमे सकलित करने का निश्चय किया, अत उनमे मे पुनः छटनी की और जो-जो वचन, शिक्षाएं मुझ अधिक हृदयस्पर्शी व विचार-समृद्ध लगे उन्हे प्राथमिकता दी। शिक्षाओ का सकलन इतना कठिन नहीं था जितना कठिन लगा—उनका विपयानुक्रम से वर्गीकरण। एक ही पद्य अनेक विपयो से सम्बद्ध दीखता है, असमजस खडा होता है उसे इस विपय मे रखे या उस विपय मे। पढते समय आलोचको को भी शायद ऐसा विकल्प उठे कि यह अमुक विपय मे जाना चाहिए, पर उसका भाव पूर्व प्रकरण के किसी अन्य विपय को स्पष्ट करता है—ऐसी स्थिति मे शिक्षाओ का विपयान्तर कर पाना बडा कठिन होता है। पूर्ण सावधानी वरतते हुए भी सभवत एक-आध सूक्ति कही दुवारा भी आगई हो और वह ध्यान मे न आ सकी हो। प्राय सूक्तियो मे ग्रंथो का स्थल निर्देश भी करने का प्रयत्न किया है कुछ सुभापित ग्रंथ से नही, ग्रंथकर्ता के नाम से ही प्रसिद्ध है, ग्रंथ का कुछ सदर्भ मेरे ध्यान मे नही आया—उन्हे ग्रंथकार आचार्य के नाम से ही उद्धृत कर दिया गया है। ग्रंथ व ग्रंथकारो के विपय मे कुछ ऐतिहासिक जानकारी परिशिष्ट मे दे दी है।

इस सकलन मे विशेप ध्यान रखा गया है कि पाठक को जैन सुभापितो से परिचय कराने की वजाय जैन धर्म की शिक्षाओ से अनुप्रीणित किया जाय। जीवन की वहुविध परिस्थितियो को स्पर्श करनेवाली और कुछ स्पष्ट मार्गदर्शन करनेवाली शिक्षाओ

भूमिका



कहा जाता है कि इस धरा पर मानव-जीवन दुर्लभ है। यह भी कहा जाता है कि ससार के समस्त प्राणियो मे सर्वश्रेष्ठ प्राणी 'मनुष्य' है। वस्तुतः यह मान्यता इसलिए है कि मनुष्य मे विवेक होता है, वह भले-बुरे के बीच भेद कर सकता है और सन्मार्ग पर चलने की क्षमता रखता है। अपने इस गुण के कारण ही वह अन्य जीवधारियो की तुलना मे ऊचे स्थान का अधिकारी माना गया है।

लेकिन दुर्भाग्य से ऐसे व्यक्तियो की सख्या नगण्य है—जिनका विवेक सतत जागरूक रहता हो और जो आत्म-कल्याणकारी एव लोक-हितकारी मार्ग का निरन्तर अनुसरण करते हो। सत्य बात यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर मे सद् और असद् दो प्रकार की वृत्तिया होती है। यह वृत्तियां आपस मे बराबर सघर्ष करती रहती है। उस सघर्ष मे जिस वृत्ति की विजय होती है, उसी के सकेत पर मनुष्य चलता है। महात्मा गाधी ने इस आन्तरिक सघर्ष को कौरवो और पाण्डवो के बीच हुए महाभारत की संज्ञा दी थी। यह युद्ध कभी समाप्त नही हुआ; न जब तक मनुष्य का अस्तित्व है समाप्त होगा।

असत्यमप्रत्ययमूलकारणम् ।

असत्य अविश्वास का मूल कारण है। अत विश्वास चाहनेवाले को असत्य का त्याग करना चाहिए।

(पृष्ठ ४७-२४)

ण भाइयव्वं, भीतं खु भया अइंति लहुयं।

भय से डरना नही चाहिए। भयभीत मनुष्य के पास भय शीघ्र आते है।

(पृष्ठ ५६।२)

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्व विणासणो।

क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का, माया मैत्री का और लोभ सभी सद्गुणो का विनाश कर डालता है।

(पृष्ठ ६०।१०)

माणविजए णं मद्दवं जणयई।

अभिमान को जीत लेने से मृदुता (नम्रता) जागृत होती है।

(पृष्ठ ६४।५)

सयणस्स जणस्स पिओ, णरो अमाणी सदा हवदि लोए।
णाणं जसं च अत्थं, लभदि सकज्जं च साहेदि।

निरभिमानी मनुष्य जन और स्वजन—सभी को सदा प्रिय लगता है। वह ज्ञान, यश और सम्पत्ति प्राप्त करता है तथा अपना प्रत्येक कार्य सिद्ध कर सकता है।

(पृष्ठ ६५।६)

सक्का वण्ही णिवारेतुं, वारिणा जलितो बहिं।
सव्वोदही जलेणावि, मोहग्गी दुण्णिवारओ।।

न कया वि मणेण पावएणं पावगं किंचि वि झायव्वं।
वईए पावियाए पावग न किंचि वि भासियव्वं॥

मन से कभी भी बुरा नही सोचना चाहिए।
वचन से कभी भी बुरा नही बोलना चाहिए।

(पृष्ठ १२९।८)

सद्धा खमं णे विणइअत्तु रागं।

धर्म-श्रद्धा हमे राग (आसक्ति) से मुक्त कर सकती है।

(पृष्ठ १५१।७)

वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य।
माहं परेहि दम्मंतो बंधणेहि वहेहि य॥

दूसरे वध और बधन आदि से दमन करे, इससे तो अच्छा है कि मैं स्वयं ही सयम और तप के द्वारा अपना (इच्छाओ का) दमन कर लूँ।

(पृष्ठ १६९।७)

कामासक्तम्य नास्ति चिकित्सितम्।

कामासक्त व्यक्ति का कोई इलाज नही है। अर्थात् काम-रोग की कोई चिकित्सा नही है।

(पृष्ठ १८४।१८)

खीरे दूमि जधा पप्प, विणासमुवगच्छति।
एवं रागो व दोसो य, बंभचेर विणासणो॥

जरा-सी खटाई भी जिस प्रकार दूध को नष्ट कर देती है, उसी प्रकार राग-द्वेप का संकल्प संयम को नष्ट कर देता है।

(पृष्ठ १९८।१२)

अनुक्रमणिका

नीति-दर्शन

खण्ड १

नीति-दर्शन

विषय : ३५ : शिक्षाएँ : ५९१

१ उत्तम मंगल

१, णमो अरिहंताणं,
णमो सिद्धाणं,
णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्वसाहूणं ।

—भगवती सूत्र १।१

अरिहन्तो को नमस्कार, सिद्धो को नमस्कार, आचार्यो को नमस्कार, उपाध्यायो को नमस्कार, सर्वसाधुओ को नमस्कार ।

२. एसो पंच णमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥

—आवश्यकमलयगिरि खण्ड-२ अ० १

इन पाँचो पदो को किया हुआ यह नमस्कार सभी पापो का नाश करनेवाला है। ससार के सभी मगलो मे यह प्रथम (मुख्य) मंगल है।

३. चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगल, सिद्धा मंगलं,
साहू मगल केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं ।

—आवश्यक सूत्र अ० ४

मगल चार है—अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवल-प्ररूपित धर्म ।

२ देव-गुरु

१. भवबीजाङ्कुरजनना, रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै।
—वीतरागस्तोत्र-प्रकरण-२१।४४

भव अर्थात् जन्म-मरण के बीज को उत्पन्न करनेवाले राग—द्वेष आदि जिसके नष्ट हो गये है, वह नाम से चाहे ब्रह्मा हो, विष्णु हो, शिव हो या जिन हो, उसे नमस्कार है।

२. महाव्रतधरा धीरा, भैक्षमात्रोपजीविनः।
सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मताः॥
—योगशास्त्र २।८

महाव्रतधारी, धैर्यवान, शुद्ध भिक्षा से जीनेवाले, सयम मे स्थिर रहनेवाले एव धर्म का उपदेश देनेवाले महात्मा गुरु माने गये है।

३. कम्माणनिज्जरट्ठाए, एव खु गणे भवे धरेयव्वो।
—व्यवहारभाष्य ३।४५

कर्मों की निर्जरा के लिए ही आचार्य को सघ का नेतृत्व सभालना चाहिए।

४. स किं गुरुः पिता सुहृद्वा योऽभ्यसूययाऽर्भं बहुदोषं,
बहुषु वा प्रकाशयति न शिक्षयति च॥
—नीतिवाक्यामृत ११।५३

बहकाया हुआ व्यक्ति (व्युद्ग्राहित) उसे ठीक नही समझता अर्थात् उसे उल्टी समझता है ।

६. विणओववेयस्स इह परलोगे वि विज्जाओ फलं पयच्छंति ।

—निशीथचूर्णि १३

विनयशील साधक की विद्याए, यहा, वहां (लोक-परलोक) मे सर्वत्र सफल होती है ।

७. आमे घडे निहित्तं, जहा जलं तं घडं विणासेति ।
इय सिद्धन्तरहस्स, अप्पाहार विणासेइ ।।

—निशीथभाष्य ६२४३

मिट्टी के कच्चे घड़े मे रखा हुआ जल जिसप्रकार उस घड़े को ही नष्ट कर डालता है, वैसे ही मन्दबुद्धि को दिया हुआ गम्भीर शास्त्र-ज्ञान, उसके विनाश के लिए ही होता है ।

८. तद्ब्रूयात् तत्परं पृच्छेत्, तत्परो तदिच्छेत् भवेत् ।
येनाऽविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत् ।।

—समाधिशतक ५३

वही बोलना चाहिए, वही दूसरो से पूछना चाहिए, उसीको इच्छा करनी चाहिए एव उसी मे तत्पर रहना चाहिए, जिससे अपना अविद्यामयरूप विद्यामय वन जाय ।

९. वरमज्ञान नाशिष्टजनसेवया विद्या ।

—नीतिवाक्यामृत ५।७१

ज्ञान शून्य रहना अच्छा है, लेकिन अशिष्टजनो की सेवा से विद्या प्राप्त करना ठीक नही है ।

१०. प्रज्ञयातिशयानो न गुरुमवज्ञायेत ।

—नीतिवाक्यामृत ११।२०

अधिक प्रज्ञावान् होने पर भी शिष्य गुरु की अवज्ञा न करे ।

५ तओ ठाणाइं देवे पीहेज्जा
माणुस भवं, आरिए खेत्ते जम्म, सुकुल पच्चायार्ति ।
—स्थानांग ३।३

देवता भी तीन बातो की इच्छा करते है—

मनुष्यजीवन, आर्यक्षेत्र मे जन्म और श्रेष्ठ कुलकी प्राप्ति ।

६ जिह्वे ! प्रह्वीभव त्व सुकृति-सुचरितोच्चारणे सुप्रसन्ना,
भूयास्तामन्यकीर्ति श्रुतिरसिकतया मेऽद्यकर्णौ सुकर्णौ ।
वीक्ष्याऽन्य प्रौढलक्ष्मी द्रुतमुपचिनुत लोचने ! रोचनत्वं,
ससारेऽस्मिन्नसारे फलमिति भवतां जन्मनो मुख्यमेव ॥
—शान्तसुधारस, प्रमोदभावना १४

हे जीभ ! धार्मिको के दानादि गुणो का गान करने मे अत्यन्त प्रसन्न होकर तत्पर रहो। कानो ! दूसरो की कीर्त्ति सुनने मे रसिक होकर सुकर्ण (अच्छे कान) बनो। नेत्रो ! दूसरो की बढती हुई लक्ष्मी को देखकर प्रसन्नता प्रकट करो। इस असार-ससार मे जन्म पाने का तुम्हारे लिए यही मुख्य फल है।

७ स्वर्णस्थाले क्षिपति स रज पाद शौच विधत्ते,
पीयूषेण प्रवरकरिण वाहयत्येन्धभारम् ।
चिन्तारत्नं विकिरति कराद् वायसोड्डायनार्थ,
यो दुष्प्राप्यं गमयति मुधा मर्त्यजन्मप्रमत्त. ।
— सिन्दूरप्रकरण ५

जो व्यक्ति आलस्य-प्रमाद के वश, मनुष्य जन्म को व्यर्थ गँवा रहा है, वह अज्ञानी मनुष्य सोने के थाल मे मिट्टी भर रहा है, अमृत से पैर धो रहा है, श्रेष्ठ हाथी पर ईन्धन ढो रहा है और चिन्तामणि रत्न को काग उड़ाने के लिए फेंक रहा है।

६. असुयाणं धम्माणं सम्मं सुणणयाए अब्भुट्ठेयव्वं भवति ।

—स्थानांग ८

अभी तक नही सुने हुए धर्म को सुनने के लिए तत्पर रहना चाहिए ।

७. सुयाणं धम्माणं ओगिण्हणयाए अवधारणयाए—
अब्भुट्ठेयव्वं भवति ।

—स्थानांग ८

सुने हुए धर्म को ग्रहण करने—उस पर आचरण करने को तत्पर रहना चाहिए ।

८. एगे चरेज्ज धम्मं ।

—प्रश्न० २।३

भले ही कोई साथ न दे, अकेले ही सद्धर्म का आचरण करना चाहिए ।

९ धम्मे हरए बम्भे सन्तितित्थे,
अणाविले अत्तपसन्नलेसे ।
जहिं सिणाओ विमलो विसुद्धो,
सूसीइभूओ पजहामि दोसं ।।

—उत्त० १२।४६

धर्म मेरा जलाशय है, ब्रह्मचर्य शान्तितीर्थ है, आत्मा की प्रसन्न-लेश्या मेरा निर्मल घाट है। जहाँ पर आत्मा स्नान कर कर्ममल से मुक्त हो जाता है ।

१०. धणेण किं धम्मधुराहिगारे ?

—उत्त० १४।१७

धर्म की धुरा को खीचने के लिए धन की क्या आवश्यकता है ? (वहा तो सदाचार की जरूरत है :)

११. एक्को हु धम्मो नरदेव ! ताण,
न विज्जइ अन्नमिहेह किंचि ।

—उत्त० १४।४०

धर्म ही मनुष्य का सच्चा बंधु है मित्र है, और गुरु है। इसलिए स्वर्ग एवं मोक्ष के सुख देनेवाले धर्म मे बुद्धि को स्थिर करना चाहिए।

१८. धम्ममि जो दढमई, सो सूरो सत्तिओ य वीरो य।
ण हु धम्मणिरुस्साहो, पुरिसो सूरो सुबलिओऽवि।

—सूत्र० नि० ६०

जो व्यक्ति धर्म मे दृढ निष्ठा रखता है, वस्तुत वही बलवान है, वही शूरवीर है। जो धर्म मे उत्साहहीन है, वह वीर एव बलवान होते हुए भी न वीर है, न बलवान है।

१९. धम्मो अत्थो कामो, भिन्ने ते पिंडिया पडिसवत्ता।
जिणवयणं उत्तिन्ना, असवत्ता होंति नायव्वा॥

—दशवै० नि० २६२

धर्म, अर्थ और काम को भले ही अन्य कोई परस्पर विरोधी मानते हो, किन्तु जिनवाणी के अनुसार तो वे कुशल अनुष्ठान मे अवतरित होने के कारण परस्पर असपत्न=अविरोधी है।

२०. जिणवयणंमि परिणाए, अवत्थविहिआणुठाणवो धम्मो।
सच्छासयप्पयोगा अत्थो, वीसंभओ कामो॥

— दशवै० नि० २६४

अपनी-अपनी भूमिका के योग्य विहित अनुष्ठान रूप धर्म, स्वच्छ आशय से प्रयुक्त अर्थ, विस्रंभयुक्त (मर्यादानुकूल वैवाहिक नियत्रण से स्वीकृत) काम—जिनवाणी के अनुसार ये परस्पर अविरोधी है।

२१. ण कुणइ पारत्तहियं, सो सोयइ संकमणकाले।

—आव० नि० ८३७

जो इस जन्म मे परलोक की हित साधना नही करता, उसे मृत्यु के समय पछताना पडता है।

२८ धम्मे अणुजुत्तो सीयलो, उज्जुत्तो उण्हो ।

—आचा० नि० १।३।१

धर्म मे उद्यमी=क्रियाशील व्यक्ति, उष्ण=गर्म है, उद्यमहीन शीतल=ठडा है ।

२९ यस्तु आत्मनः परेषां च शान्तये, तद्भावतीर्थं भवति ।

—उत्त० नि० १२

जो अपने को और दूसरो को शान्ति प्रदान करता है, वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप धर्म भावतीर्थ है ।

३०. शरीरलेश्यासु हि अशुद्धास्वपि आत्मलेश्या शुद्धा भवन्ति

—उत्त० चूर्णि १२

वाहर मे शरीर की लेश्या (वर्ण-आदि) अशुद्ध होने पर भी अन्दर मे आत्मा की लेश्या (विचार) शुद्ध हो सकती है ।

३१. देशकालानुरूप धर्म कथयन्ति तीर्थकराः ।

—उत्त० चूर्णि २३

तीर्थंकर देश और काल के अनुरूप धर्म का उपदेश करते है ।

३२ सव्वसत्ताण अहिंसादिलक्खणो धम्मो पिता, रक्खणत्तातो ।

—नन्दी चूर्णि १

अहिंसा-सत्य आदि धर्म सब प्राणियो का पिता है, क्योकि वही सबका रक्षक है ।

३३. गहिओ सुग्गइ मग्गो, नाहं मरणस्स बीहेमि ।

—आतुर० ६३

मैने सद्गति का मार्ग (धर्म) अपनालिया है । अब मै मृत्यु से नही डरता ।

३४ धीरेण वि मरियव्वं, काउरिसेण वि अवस्समरियव्वं ।
दुण्हं पि हु मरियव्वे, वरं खु धीरत्तेण मरिउं ॥

—आतुर० ६४

जैनो को व्यवहार के लिए लौकिकविधि—रीतिरिवाज को ही मान्य करना चाहिए, बशर्ते कि उसमे सम्यक्त्व की हानि न हो, एवं व्रतों में दोष न लगे।

४०. पीइकरो वन्नकरो, भासकरो जसकरो रइकरो य।
अभयकरो निव्वुइकरो, परत्त वि अज्जिओ धम्मो॥
—तन्दुलवैचारिक ३४

यह आर्यधर्म इह-परलोक मे प्रीति, वर्ण—कीर्ति या रूप, भास—तेजस्विता या मिष्टवाणी, यश, रति, अभय एव निर्वृत्ति-आत्मिक सुख का करनेवाला है।

४१. अबन्धूनामसौ बन्धु-रसखीनामसौ सखा।
अनाथानामसौ नाथो, धर्मो विश्वैकवत्सलः॥
—योगशास्त्र ४।१००

यह धर्म अबन्धुओ का बन्धु है, अमित्रो का मित्र है और अनाथों का नाथ है। अत॰ यही जगत मे परमवत्सल है।

४२. सकल्प्य कल्पवृक्षस्य, चिन्त्यं चिन्तामणेरपि।
असंकल्प्यमसंचिन्त्यं, फलं धर्मादवाप्यते॥
—आत्मानुशासन २२

कल्पवृक्ष से सकल्प किया हुआ और चिन्तामणि से चिन्तन किया हुआ पदार्थ प्राप्त होता है, किन्तु धर्म से असकल्प्य एव अचिन्त्य फल मिलता है।

४३. दिव्वं च गइं गच्छन्ति चरित्ता धम्ममारियं।
—उत्तराध्ययन १६।२५

आर्य धर्म का आचरण कर के महापुरुष दिव्य गति को प्राप्त होते है।

४. अत्थि सत्थं परेण परं,
नत्थि असत्थं परेण परं।

—आचारांग १।३।४

शस्त्र (=हिंसा) एक से एक बढकर है। परन्तु अशस्त्र (=अहिंसा) एक-से-एक बढकर नही है, अर्थात् अहिंसा की साधना से बढकर श्रेष्ठ दूसरी कोई साधना नही है।

५. वयं पुण एवमाइक्खामो, एवं भासामो,
एवं परुवेमो, एवं पण्णवेमो,
सव्वे पाणा, सव्वे भूया,
सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता
न हंतव्वा, न अज्जावेयव्वा
न परिघेतव्वा, न परियावेयव्वा
न उद्दवेयव्वा।
इत्थं विजाणह नत्थित्थ दोसो।
आरियवयणमेयं।

—आचारांग १।४।२

हम ऐसा कहते है, ऐसा बोलते है, ऐसी प्ररूपणा करते है, ऐसी प्रज्ञापना करते है कि—

किसी भी प्राणी, किसी भी भूत, किसी भी जीव और किसी भी सत्व को न मारना चाहिये, न उनपर अनुचित शासन करना चाहिये, न उनको गुलामो की तरह पराधीन बनाना चाहिये, न उन्हे परिताप देना चाहिये और न उनके प्रति किसी प्रकार का उपद्रव करना चाहिए।

उक्त अहिंसा धर्म मे किसी प्रकार का दोष नही है, यह ध्यान मे रखिये।

अहिंसा वस्तुत. आर्य (पवित्र) सिद्धान्त है।

२० एगं इसिं हणमाणे अणंते जीवे हणइ।

—भगवती ९।३४

एक अहिंसक ऋषि की हत्या करनेवाला एक प्रकार से अनन्त जीवों की हिंसा करनेवाला होता है।

२१ अट्ठा हणंति, अणट्ठा हणंति।

—प्रश्नव्याकरण १।१

कुछ लोग प्रयोजन से हिंसा करते हैं, और कुछ लोग विना प्रयोजन भी हिंसा करते हैं।

२२. कुद्धा हणंति, लुद्धा हणंति, मुद्धा हणंति।

—प्रश्नव्याकरण १।१

कुछ लोग क्रोध से हिंसा करते हैं, कुछ लोग लोभ से हिंसा करते हैं और कुछ लोग अज्ञान से हिंसा करते हैं।

२३. पाणवहो चंडो, रुद्दो, खुद्दो अणारियो,
निग्घिणो, निसंसो, महब्भयो।

—प्रश्नव्याकरण १।१

प्राणवध (हिंसा) चंड है, रौद्र है, क्षुद्र है, अनार्य है, करुणारहित है, क्रूर है, और महाभयंकर है।

२४ अहिंसा तस-थावर-सव्वभूयखेमंकरी।

—प्रश्नव्याकरण २।१

अहिंसा, त्रस, और स्थावर (चर-अचर) सब प्राणियों का कुशल-क्षेम करनेवाली है।

२५ भगवती अहिंसा… भीयाण विव सरणं।

—प्रश्नव्याकरण २।१

जैसे भयाक्रान्त के लिए शरण की प्राप्ति हितकर है, प्राणियों के लिए वैसे ही, अपितु इससे भी विशिष्टतर भगवती अहिंसा हितकर है।

३३. सायं गवेसमाणा परस्स दुक्खं उदीरंति ।

—आचारांगनिर्युक्ति ९४

कुछ लोग अपने सुख की खोज मे दूसरो को दुःख पहुंचा देते है ।

३४ हिंसाए पडिवक्खो होइ अहिसा ।

—दशवैकालिकनिर्युक्ति ४५

हिंसा का प्रतिपक्ष—अहिसा है ।

३५. अज्झत्थ विसोहीए, जीवनिकाएहि संथडे लोए ।
देसियमहिंसगत्तं, जिणेहि तेलोक्कदरिसीहिं ॥

—ओघनिर्युक्ति ७४७

त्रिलोकदर्शी जिनेश्वर देवो का कथन है कि अनेकानेक जीवसमूहो से परिव्याप्त विश्व मे साधक का अहिसकत्व अन्तर मे अध्यात्म-विशुद्धि की दृष्टि से ही है, वाह्यहिंसा या अहिंसा की दृष्टि से नही ।

३६. उच्चलियंमि पाए
ईरियासमियस्स संकमट्ठाए ।
वावज्जेज्ज कुलिंगी,
मरिज्ज त जोगमासज्ज ॥
न य तस्स तन्निमित्तो
बंधो सुहुमोवि देसिओ समए ।
अणवज्जो उ पओगेण,
सव्वभावेण सो जम्हा ॥

—ओघनिर्युक्ति ७४८-४९

कभी—कभार ईर्यासमितियुक्त साधु के पैर के नीचे भी कीट, पतग आदि क्षुद्र प्राणी आजाते है और दवकर मर भी जाते है—

परन्तु उक्त हिसा के निमित्त से उस साधु को सिद्धान्त में सूक्ष्म भी कर्मबध नहीं बताया है, क्योकि वह अन्तर मे सर्वतो-

४०. जा जयमाणस्स भवे, विराहणा सुत्तविहिसमग्गस्स ।
सा होई निज्जरफला, अज्झत्थविसोहिजुत्तस्स ॥
—ओघनिर्युक्ति ७५९

जो यतनावान साधक अन्तर-विशुद्धि से युक्त है, और आगमविधि के अनुसार आचरण करता है, उसके द्वारा होनेवाली विराधना (हिंसा) भी कर्म-निर्जरा का कारण है।

४१. मरदु व जियदु व जीवो,
अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा ।
पयदस्स णत्थि वंधो ।
हिंसामेत्तेण समिदस्स ॥
—प्रवचन० ३।१७

वाहर मे प्राणी मरे या जीये, अयताचारी—प्रमत्त को अन्दर मे हिंसा निश्चित है। परन्तु जो अहिंसा की साधना के लिए प्रयत्नशील है, समितिवाला है, उसको वाहर मे प्राणी की हिंसा होने मात्र से कर्मवन्ध नही है, अर्थात् वह हिंसा नही है।

४२. चरदि जदं जदि णिच्चं, कमलं व जले णिरुवलेवो ।
—प्रवचन० ३।१८

यदि साधक प्रत्येक कार्य यतना से करता है, तो वह जल मे कमल की भाति निर्लेप रहता है।

४३. काउ च नाणुतप्पइ, एरिसओ निक्किवो होइ ।
— वृहत्कल्पभाष्य १३१९

अपने द्वारा किसी प्राणी को कष्ट पहुचाने पर भी, जिसके मन मे पश्चात्ताप नही होता, उसे निष्कृप-निर्दय कहा जाता है।

४४. जो उ परं कंपंतं, दट्ठूण न कंपए कढिणभावो ।
एसो उ निरणुकंपो, अणु पच्छाभावजोएणं ॥
—वृहत्कल्पभाष्य १३२०

चाहना चाहिये—बस इतना मात्र जिनशासन है, तीर्थंकरो का उपदेश है ।

४८. दुक्ख खु णिरणुकपा ।

—निशीथभाष्य ५६३३

किसी के प्रतिनिर्दयता का भाव रखना वस्तुत दु खदायी है ।

४६ सव्वे अ चक्कजोही, सव्वे अ हया सचक्केहिं ।

- आवश्यकनिर्युक्ति ४३

जितने भी चक्रयोधी (अश्वग्रीव, रावण आदि प्रति वासुदेव) हुये है, वे अपने ही चक्र से मारे गये है ।

५० असुभो जो परिणामो सा हिंसा ।

—विशेषावश्यकभाष्य १७६६

निश्चय-नय की दृष्टि से आत्मा का अशुभ परिणाम ही हिंसा है ।

५१. जह मे इट्ठाणिट्ठे सुहासुहे तह सव्वजीवाण ।

—आचारांगचूर्णि १।१।६

जैसे मुझे इष्ट-अनिष्ट, सुख-दु ख होते है, वैसे ही सब जीवो को होते है ।

५२. धम्ममहिंसासम नत्थि ।

—भक्तपरिज्ञा ९१

अहिंसा के समान दूसरा धर्म नही है ।

५३. जीववहो अप्पवहो, जीवदया अप्पणो दया होइ ।

—भक्तपरिज्ञा ९३

किसी भी अन्य प्राणी की हत्या वस्तुत. अपनी ही हत्या है, और अन्य जीव की दया अपनी ही दया है ।

५४. सव्वेसिमासमाणं हिदयं गब्भो व सव्वसत्थाणं ।

—भगवती आराधना ७९०

अहिंसा सब आश्रमो का हृदय है, सब शास्त्रो का गर्भ-उत्पत्ति-स्थान है ।

६१ अट्ठुवा अदिन्नादाणं ।

—आचारांग १।३

हिंसा, हिंसा ही नहीं, चोरी भी है ।

६२. यत्किंचित् संसारे शरीरिणां दुःख शोक भय—बीजम् ।
दौर्भाग्यादि समस्तं तद्धिंसा - संभवं ज्ञेयम् ॥

—ज्ञानर्णव, पृष्ठ १२०

संसार मे प्राणियों को जो भी दु ख-शोक-भय, दौर्भाग्य आदि है, उनका मूल कारण हिंसा ही है ।

६३. पंगु कुष्ठि कुणित्वादि द्रष्ट्वा हिंसाफलं सुधीः ।
नीरागस्त्रसजन्तूनां हिंसा संकल्पतस्त्यजेत् ॥

—योगशास्त्र २।१९

पगुपन, कोढीपन, कुणित्व (कुवडापन) आदि हिंसा के बुरे फलों को देखकर विवेकवान् गृहस्थ निरपराध त्रस जीवो की सकल्पी हिंसा का त्याग करे ।

६४. पर-दुःखविनाशिनी करुणा ।

—धर्मबिन्दु

दया, दूसरो के दु ख को दूर करनेवाली है ।

६५. यदि ग्रावा तोये तरति तरणिर्यद्युदयति—
प्रतीच्यां सप्तार्चिर्यदि भजति शैत्यं कथमपि॥
यदि क्ष्मापीठं स्यादुपरि सकलस्यापि जगतः,
प्रसूते सत्त्वानां तदपि न वध क्वापि सुकृतम् ॥

— सिन्दूरप्रकरण २६

यदि पानी मे पत्थर तर जाय, सूर्य पश्चिम मे उदय हो जाय, अग्नि ठडी हो जाय और कदाचित् यह पृथ्वी जगत् के ऊपर हो जाय तो भी हिंसा मे कभी धर्म नही होता ।

२०. मुसावाओ उ लोगम्मि सव्वसाहुहिं गरहिओ ।

—दशवैकालिक ६।१३

विश्व के सभी सत्पुरुषो ने मृषावाद (असत्य) की निन्दा की है ।

२१. भासियव्व हियं सच्चं ।

—उत्तराध्ययन १६।२७

सदा हितकारी सत्य बोलना चाहिए ।

२२. अन्नं भासइ अन्नं करेइ त्ति मुसावओ ।

—निशीथचूर्णि ३६८८

कहना कुछ और करना कुछ—यही मृषावाद (असत्यभाषण) है ।

२३. एकतः सकल पाप-मसत्योत्थ ततोऽन्यतः ।
साम्यमेव वदन्त्यार्या-स्तुलायां धृतयोस्तयोः ॥

—ज्ञानार्णव, पृष्ठ १२६

एक ओर जगत् के समस्त पाप एव दूसरी ओर असत्य का पाप —इन दोनो को तराजू मे तोला जाय तो बराबर होगे—ऐसा आर्यपुरुष कहते है ।

२४. असत्यमप्रत्ययमूलकारणम् ।

—सिन्दूरप्रकरण ३१

असत्य अविश्वास का मूल कारण है । अत विश्वास चाहनेवाले को असत्य का त्याग करना चाहिए ।



७. देव-दाणव-गंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा ।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति तं ।।

—उत्तराध्ययन १६।१६

देवता, दानव, गधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर सभी ब्रह्मचर्य के साधक को नमस्कार करते है। क्योकि वह एक वहुत दुष्कर कार्य करता है।

८. जीवो वंभा जीवम्मि चेव चरिया, हविज्ज जा जद्दिणो ।
तं जाण बंभचेरं, विमुक्कपरदेहतित्तिस्स ।।

—भगवती आराधना ८७८

ब्रह्म का अर्थ है—आत्मा, आत्मा मे चर्या-रमण करना ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचारी की पर-देह मे प्रवृत्ति और तृप्ति नही होती।

९. द्रव्यब्रह्म अज्ञानिनां वस्तिनिग्रह, मोक्षाधिकारशून्यत्वात् ।

—उत्तराध्ययनचूर्णि १६

अज्ञानी साधको का चित्तशुद्धि के अभाव मे किया जानेवाला केवल-जननेन्द्रिय-निग्रह द्रव्य ब्रह्मचर्य है, क्योकि वह मोक्ष के अधिकार से शून्य है।

१०. वस्तीन्द्रियमनसामुपशमोब्रह्मचर्यम् ।

—मनोनुशासन ६।५

जननेन्द्रिय, इन्द्रियसमूह और मन की शाति को ब्रह्मचर्य कहा जाता है।

११. नाल्पसत्त्वैर्न नि:शीलै - र्नदीनैर्नाक्षनिर्जितैः ।
स्वप्नेऽपि चरितु शक्यं, ब्रह्मचर्यमिदं नरै: ।।

- ज्ञानार्णव, पृष्ठ १३३

अल्पशक्तिवाले, सदाचाररहित, दीन और इन्द्रियो द्वारा जीते गये लोग इस ब्रह्मचर्य को स्वप्न मे भी नही पाल सकते।

१३ अपरिग्रह

१ बहुंपि लद्धुं न निहे,
परिग्गहाओ अप्पाणं अवसक्किज्जा ।

—आचारांग १।२।५

अधिक मिलने पर भी सग्रह न करे ।
परिग्रह-वृत्ति से अपने को दूर रखे ।

२. परिग्गहनिविट्ठाणं वेरं तेसि पवड्ढई ।

—सूत्रकृतांग १।६।३

जो परिग्रह (सग्रहवृत्ति) मे फँसे है, वे ससार मे अपने प्रति वैर ही वढाते है ।

३ लोभ-कलि-कसाय-महक्खंधो,
चितासयनिचयविपुलसालो ।

—प्रश्न० १।५

परिग्रह रूपी वृक्ष के स्कन्ध अर्थात् तने है—लोभ, क्लेश और कपाय । चिन्ता रूपी सैकडो ही सघन और विस्तीर्ण उसकी शाखायें है ।

४. नत्थि एरिसो पासो पडिवंधो अत्थि,
सव्वजीवाणं सव्वलोए ।

—प्रश्न० १।५

संसार मे परिग्रह के समान प्राणियो के लिए दूसरा कोई जाल एव वन्धन नही है ।

भयभीत व्यक्ति तप और सयम की साधना छोड वैठता है। भय-भीत किसी भी गुरुतर दायित्व को नही निभा सकता है।

७. न भाइयव्वं भयस्स वा, वाहिस्स वा,
रोगस्स वा, जराएवा, मच्चुस्स वा।

—प्रश्न० २।२

आकस्मिक भय से, व्याधि (मन्दघातक कुष्ठादि रोग) से, रोग (शीघ्रघातक हैजा आदि) से बुढापे से, और तो क्या, मृत्यु से भी कभी डरना नही चाहिए।

८. दाणाणं चेव अभयदाण।

—प्रश्न० २।४

सव दानो मे अभयदान श्रेष्ठ है।

९ जो ण कुणइ अवराहे, सो णिस्संको दु जणवए भमदि।

—समयसार ३०२

जो किसी प्रकार का अपराध नही करता, वह निर्भय होकर जनपद मे भ्रमण कर सकता है। इसी प्रकार निरपराध—निर्दोप आत्मा (पाप नही करनेवाला) भी सर्वत्र निर्भय होकर विचरता है।

१०. अभयदाया भवाहि य।

—उत्तराध्ययन १८।११

सव को अभयदान देनेवाले वनो !

११. निब्भएण गतव्व।

—निशीथचूर्णि २७३

जीवन पथ पर निर्भय होकर विचरण करना चाहिए।

श्रमणधर्म का अनुकरण करते हुए भी जिसके क्रोध आदि कपाय उत्कट है तो उसका श्रमणत्व वैसा ही निरर्थक है, जैसा कि ईख का फूल।

५ अणथोवं वणथोवं, अग्गीथोवं कसायथोव च।
ण हु भे वीससियव्व, थोवं पि हु ते बहूं होइ॥
—आवश्यकनिर्युक्ति १२०

ऋण, व्रण (घाव) अग्नि और कपाय, यदि इनका थोडा-सा अंश भी है तो उसकी उपेक्षा नही करनी चाहिए। ये अल्प भी समय पर वहुत [विस्तृत] हो जाते है।

६. अकसाय खु चरित्तं, कसायसहिओ न संजओ होई।
—वृहत्कल्पभाष्य २७१२

अकपाय [वीतरागता] ही चारित्र है। अत कपायभाव रखने वाला सयमी नही होता।

७. जह कोहाइ विवढ्ढी, तह हाणी होइ चरणे वि।
—निशीथभाष्य २७९

ज्यो-ज्यो क्रोधादि कपाय की वृद्धि होती है। त्यो-त्यो चारित्र की हानि होती है।

८. ज अज्जिय चरित्तं, देसूणाए वि पुव्वकोडीए।
त पि कसाइयमेत्तो, नासेइ नरो मुहुत्तेणं॥
—निशीथभाष्य २७९३

देसोनकोटिपूर्व की साधना के द्वारा जो चारित्र अर्जित किया है, वह अन्तर्मुहूर्त भर के प्रज्वलित कपाय से नष्ट हो जाता है।

९. कोह माण च मायं च, लोभ च पाववड्ढण।
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छंतो हियमप्पणो॥
—दशवैकालिक ८।३७

१४. कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुय सील तवो जलं ।

—उत्तराध्ययन २३।५३

कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ) को अग्नि कहा है। उसको बुझाने के लिए श्रुत [ज्ञान], शील, सदाचार और तप जल के समान है।

१५ संसारस्स उ मूलं कम्मं, तस्स वि हुंति य कसाया ।

—आचारांगनिर्युक्ति १८९

संसार का मूल कर्म है और कर्म का मूल कषाय है।



क्रोध मे अन्धा हुआ व्यक्ति पास मे खडी मा, वहन और वच्चे को भी मारने लग जाता है।

७. कोवेण रक्खसो वा, णराण भीमो णरो हवदि।

—भगवती आराधना १३६१

क्रुद्ध मनुष्य राक्षस की तरह भयङ्कर वन जाता है।

८. रोसेण रुद्दहिदओ, णारगसीलो णरो होदि।

—भगवतीआराधना १३६६

क्रोध से मनुष्य का हृदय रौद्र वन जाता है, वह मनुष्य होने पर भी नारक (नरक के जीव) जैसा आचरण करने लग जाता है।

९. कोहेण अप्प डहित परं च, अत्थं च धम्मं च तहेव काम।
तिव्वंपि वेरं य करेंति कोधा, अधम गतिं वावि उविंति कोहा॥

— ऋषिभाषित ३६।१३

क्रोध से आत्मा 'स्व' एव 'पर' दोनो को जलाता है अर्थ-धर्म-काम को जलाता है, तीव्र वैर भी करता है तथा नीचगति को प्राप्त करता है।

१०. भस्मी भवति रोषेण पुंसां धर्मात्मकं वपुः।

—शुभचन्द्राचार्य

क्रोध से मनुष्य का धर्म प्रवृत्ति रूप शरीर जल जाता है।

११. उत्तापकत्व हि सर्वकार्येषु सिद्धीनां प्रथमोऽन्तरायः।

—नीतिवाक्यामृत १०।१३४

गर्म होना सभी कार्यो की सिद्धि मे पहला विघ्न है।

१२. न कस्यापि क्रुद्धस्य पुरस्तिष्ठेत्।

—नीतिवाक्यामृत ७।७

क्रुद्ध व्यक्ति के सामने खड़े मत रहो। फिर चाहे वह कोई भी हो।

१८ माया

१. जइ वि य णिगणे किसे चरे, जइ वि य भुंजेमासमंतसो।
जे इह मायाइ मिज्जइ, आगता गब्भाऽणंतसो॥

—सूत्रकृतांग १।२।१।९

भले ही नग्न रहे, मास-मास का अनशन करे और शरीर को कृश एव क्षीण कर डाले, किन्तु जो अन्दर मे दम्भ रखता है, वह जन्म-मरण के अनन्तचक्र मे भटकता ही रहता है।

२. माई पमाई पुण एइ गब्भं।

—आचारांग १।३।१

मायावी और प्रमादी वार-वार गर्भ मे अवतरित होता है, जन्म मरण करता है।

३. वंसीमूलकेतणसमाणं मायं अणुपविट्ठे जीवे,
कालं करेइ णेरइएसु उववज्जति।

—स्थानांग ४।२

वास की जड के समान अतिनिविड़-गाठदार दम्भ आत्मा को नरक गति की ओर ले जाता है।

४. मायी विउव्वइ, नो अमायी विउव्वइ।

—भगवती १३।९

जिसके अन्तर मे माया का अश है, वही विकुर्वणा (नाना रूपो का प्रदर्शन) करता है। अमायी (सरल आत्मावाला) नही करता।

जगत् को ठगते हुए कपटीपुरुष वास्तव मे अपने आप को ही ठगते है।

१२. व्यसनशतसहाया दूरतो मुञ्च मायाम्।

—सिन्दूरप्रकरण ५६

सैकडो दुःख देनेवाली माया को दूर से ही छोड दो।

१३ काष्ठपात्र्यमाकदैव पदार्थोरध्यते।

—नीतिवाक्यामृत ८।२२

काठ की हाडी मे एक वार ही पदार्थ पकाया जा सकता है, दूसरी वार नही, वैसे ही माया-कपट से एक वार ही आदमी अपना काम निकाल सकता है, दूसरी वार कोई उसके कपट जाल मे नही फसता।

६. किम्रिरागरत्तवत्थसमाणं लोभ अणुपविट्ठे जीवे,
कालं करेइ नेरइएसु उववज्जति ।

—स्थानांग ४।२

कृमिराग अर्थात् मजीठ के रग के समान जीवन मे कभी नही छूटनेवाला लोभ आत्मा को नरकगति की ओर ले जाता है ।

७. इच्छालोभिते मुत्तिमग्गस्स पलिमंथू ।

—स्थानांग ६।३

लोभ, मुक्तिमार्ग का बाधक है ।

८. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं ।

—प्रश्नव्याकरण २।२

मनुष्य लोभग्रस्त होकर झूठ बोलता है ।

९. कसिणं पि जो इम लोय, पडिपुण्णं दलेज इक्कस्स ।
तेणावि से ण सतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया ॥

—उत्तराध्ययन ८।१६

धन-धान्य से भरा हुआ यह समग्र विश्व भी यदि किसी एक व्यक्ति को दे दिया जाय, तब भी वह उससे सन्तुष्ट नही हो सकता—इस प्रकार आत्मा की यह तृष्णा बडी दुष्पूर (पूर्ण होना कठिन) है ।

१०. जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई ।
दो मासकय कज्जं, कोडिए वि न निट्ठियं ॥

—उत्तराध्ययन ८।१७

ज्यो-ज्यो लाभ होता है, त्यो-त्यो लोभ होता है । इस प्रकार लाभ से लोभ निरन्तर बढ़ता ही जाता है । दो माशा सोने से संतुष्ट होनेवाला करोड़ो (स्वर्णमुद्राओ) से भी सन्तुष्ट नही हो पाया ।

११. लोभ विजएणं संतोस जणयई ।

—उत्तराध्ययन २९।७०

लोभ को जीत लेने से सतोष की प्राप्ति होती है ।

१७: प्रथममशनपानप्राप्तिवाञ्छाविहस्ता
स्तदनु वसनवेश्माऽलङ्कृतिव्यग्रचित्ता ।
परिणयनमपत्यावाप्तिमिष्टेन्द्रियार्थान्,
सततमभिलपन्त स्वस्थता क्वाश्नुवीरन् ॥

—शान्तासुधारस-कारुण्यभावना

रोटी, पानी, कपडा, घर, आभूषण, स्त्री, सन्तान एव इन्द्रियो के इष्ट शब्दादि विपयो की अभिलापा मे व्याकुल बने हुए ससारी जीव स्वस्थता का स्वाद कैसे ले सकते है ?

१८, भूशय्या भैक्ष्यमशन, जीर्णवासो वन गृहम् ।
तथापि नि:स्पृहस्याहो ! चक्रिणोप्यधिक सुखम् ॥

—ज्ञानसार

चाहे भूमि का शयन है, भिक्षा का भोजन है, पुराने कपडे है एव वन मे घर है, फिर भी नि:स्पृह मनुष्य को चक्रवर्ती से भी अधिक सुख है ।

१९. लोभमूलानि पापानि, रसमूलानि व्याधय: ।
स्नेहमूलानि शोकानि त्रीणि त्यक्त्वा सुखी भव ॥

उपदेशमाला

लोभ पापो का मूल है, रसासक्ति रोगो का मूल है और स्नेह शोको का मूल है । इन तीनो को त्यागकर सुखी वनो !



२१ स्वाध्याय

१ सज्झाए वा निउत्तेण, सव्वदुक्खविमोक्खणे ।

—उत्तराध्ययन २६।१०

स्वाध्याय करते रहने से समस्त दु खो से मुक्ति मिल जाती है ।

२. सज्झायं च तवो कुज्जा सव्वभावविभावण ।

—उत्तराध्ययन २६।३७

स्वाध्याय सव भावो (विपयो) का प्रकाश करनेवाला है ।

३. सज्झाएणं णाणावरणिज्जं कम्मं खवेई ।

— उत्तराध्ययन २९।१८

स्वाध्याय से ज्ञानावरण (ज्ञान को आच्छादन करनेवाले) कर्म का क्षय होता है ।

४ न वि अत्थि न वि अ होही, सज्झाय सम तवोकम्मं ।

— बृहत्कल्पभाष्य ११६९

स्वाध्याय के समान दूसरा तप न कभी अतीत मे हुआ है, न वर्तमान मे कही है और न भविष्य मे कभी होगा ।

५. सुष्ठु आ-मर्यादया अधीयते इति स्वाध्यायः ।

—स्थानांग-टीका ५।३।४६५

सत्‌शास्त्र को मर्यादापूर्वक पढना स्वाध्याय है ।

२३ तितिक्षा

१. एस वीरे पससिए,
जे ण णिविज्जति आदाणाए ।

—आचारांग १।२।४

जो अपनी साधना मे उद्विग्न नही होता, वही वीर साधक प्रशंसित होता है ।

२. वोसिरे सव्वसो कायं, न मे देहे परीसहा ।

—आचारांग १।८।८।२१

सब प्रकार से शरीर का मोह छोड दीजिए, फलतः परीषहो के आने पर विचार कीजिए कि मेरे शरीर मे परीषह है ही नही ।

३. दुक्खेण पुट्ठे धुयमायएज्जा ।

—सूत्रकृतांग १।७।२९

दुःख आ जाने पर भी मन पर सयम (समता) रखना चाहिए ।

४. तितिक्खं परमं नच्चा ।

—सूत्रकृतांग १।८।२६

तितिक्षा को परम-धर्म समझ कर आचरण करो ।

५. वुच्चमाणो न संजले ।

—सूत्रकृतांग १।९।३१

साधक को कोई दुर्वचन कहे, तो भी वह उस पर गरम न हो, क्रोध न करे ।

६. देहबलं खलु विरियं, बलसरिसो चेव होति परिणामो।

—बृहत्कल्पभाष्य ३९४८

देह का बल ही वीर्य है और बल के अनुसार ही आत्मा में शुभाशुभ भावो का तीव्र या मंद परिणमन होता है।

७. वसुंधरेयं जह वीरभोज्जा।

—बृहत्कल्पभाष्य ३२५४

यह वसुन्धरा वीरभोग्या है।

८. परेषां दूषणाज्जातु न बिभेति कवीश्वरः।
किमलूकभयाद् धुन्वन् ध्वान्तं नोदेति भानुमान्।

—आदिपुराण १।७५

दूसरो के भय से कविजन (विद्वान्) कभी डरते नही है। क्या उल्लुओ के भय से सूर्य अंधकार का नाश करना छोड देता है?



५ गिलाणस्स अगिलाए वेयावच्चकरणयाए अब्भुट्ठेयव्वं भवइ।

—स्थानांग ८

रोगी की सेवा करने के लिए सदा अग्लानभाव से तैयार रहना चाहिए।

६. समाहिकारए ण तमेव समाहिं पडिलब्भई।

—भगवतीसूत्र ७।१

जो दूसरो के सुख एव कल्याण का प्रयत्न करता है वह स्वयं भी सुख एव कल्याण को प्राप्त होता है।

७. जो करेइ सो पसंसिज्जइ।

—आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ ११३२

जो सेवा करता है, वह प्रशसा पाता है।

८ कार्यकृद् गृह्यको जनः।

—त्रिषष्ठिशलाका० १।१।६०८

जो कार्य (सेवा) करता है, लोक उसे पूजते ही है।



४. एगागिस्स हि चित्ताइं विचित्ताइं खणे खणे।
उपज्जंति वियंते य वसेवं सज्जणे जणे॥

—बृहत्कल्पभाष्य ५७१९

एकाकी रहनेवाले साधक के मन मे प्रतिक्षण नाना प्रकार के विकल्प उत्पन्न एव विलीन होते रहते है, अत. सज्जनो की सगति मे रहना ही श्रेष्ठ है।

५. जह कोति अमयरुक्खो विसकंटगवल्लिवेढितो संतो।
ण चइज्जइ अल्लीतु, एव सो खिसमाणो उ॥

बृहत्कल्पभाष्य ६०९२

जिस प्रकार जहरीले काटोवाली लता से वेष्टित होने पर अमृत-वृक्ष का भी कोई आश्रय नही लेता, उसी प्रकार दूसरो को तिरस्कार करने और दुर्वचन कहनेवाले विद्वान् को भी कोई नही पूछता।

६. अलसं अणुबद्धवेरं, सच्छंदमती पयहीयव्वो।

—व्यवहारभाष्य १।६६

आलसी, वैर विरोध रखनेवाले, और स्वेच्छाचारी का साथ छोड देना चाहिए।

७. सुजणो वि होइ लहुओ, दुज्जण संमेलणाए दोसेण।
माला वि मोल्लगरुया, होदि लहू मडय संसिट्ठा॥

—भगवतीआराधना ३४५

दुर्जन की सगति करने से सज्जन का भी महत्व गिर जाता है, जैसे कि मूल्यवान् माला मुर्दे पर डाल देने से निकम्मी हो जाती है।

४ भिक्खाए वा गिहत्थे वा, सुव्वए कम्मई दिवं ।

—उत्तराध्ययन ५।२२

भिक्षु हो चाहे गृहस्थ हो, जो सुव्रती सदाचारी है, वह दिव्यगति को प्राप्त होता है ।

५ गिहिवासे वि सुव्वए ।

—उत्तराध्ययन ५।२४

धर्मशिक्षा सम्पन्न गृहस्थ गृहवास मे भी सुव्रती है ।

६. न संतसंति मरणन्ते, सीलवता बहुस्सुया ।

—उत्तराध्ययन ५।२९

ज्ञानी और सदाचारी आत्माए मरणकाल मे त्रस्त अर्थात् भयाक्रान्त नही होते ।

७ भणता अकरेन्ता य बंधमोक्खपइण्णिणो ।
वायावीरियमेत्तोण समासासेन्ति अप्पयं ।।

—उत्तराध्ययन ६।१०

जो केवल बोलते है करते कुछ नही, वे बन्ध-मोक्ष की बाते करनेवाले दार्शनिक केवल वाणी के बल पर ही अपने आपको आश्वस्त किए रहते है ।

८ न चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासणं ।

—उत्तराध्ययन ६।११

विविध-भाषाओ का पांडित्य मनुष्य को दुर्गति से नही बचा सकता । फिर भला विद्याओ का अनुशासन—अध्ययन किसी को कैसे बचा सकेगा ?

९. न त अरी कंठछित्ता करेइ,
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।

—उत्तराध्ययन २०।४८

१५ जहा खरो चंदणभारवाही,
भारस्स भागी न हु चंदणस्स ।
एवं खु नाणी चरणेण हीणो,
नाणस्स भागी न हु सोग्गईए ।।

—आव० नि० १००

चन्दन का भार उठानेवाला गधा सिर्फ भार ढोनेवाला है, उसे चन्दन की सुगन्ध का कोई पता नही चलता । इसीप्रकार चारित्र-हीन ज्ञानी सिर्फ ज्ञान का भार ढोता है। उसे सद्गति प्राप्त नही होती ।

१६. हयं नाणं कियाहीणं, हया अन्नाणओ किया ।
पासंतो पगुलो दड्ढो, धावमाणो अ अंधओ ।।

आव० नि० १०१

आचारहीन ज्ञान नष्ट हो जाता है, और ज्ञान हीन आचार । जैसे वन मे अग्नि लगने पर पगु उमे देखता हुआ और अन्धा दौडना हुआ भी आग से वच नही पाता, जलकर नष्ट हो जाता है ।

सजोगसिद्धीइ फलं वयंति,
न हु एगचक्केण रहो पयाइ ।
अधो य पंगू य वणे समिच्चा,
ते सपउत्ता नगर पविट्ठा ।।

—आव० नि० १०२

सयोग-सिद्धि (ज्ञान क्रिया का सयोग) ही फलदायी (मोक्ष रूप फल देनेवाला) होता है। एक पहिए से कभी रथ नही चलता । जैसे अन्ध और पगु मिलकर वन के दावानल से पार होकर नगर मे सुरक्षित पहु च गए, इसी प्रकार साधक भी ज्ञान और क्रिया के समन्वय से ही मुक्ति लाभ करता है ।

२२. सीलेण विणा विसया, णाणं विणासन्ति ।

—शीलपाहुड २

शील—सदाचार के बिना इन्द्रियो के विषय ज्ञान को नष्ट कर देते है ।

२३. णाण चरित्तसुद्धं थोओ पि महाफलो होई ।

—शीलपाहुड ६

चारित्र से विशुद्ध हुआ ज्ञान यदि अल्प भी है, तब भी वह महान् फल देनेवाला है ।

२४. सीलगुणवज्जिदाण, णिरत्थय माणुस जम्म ।

—शीलपाहुड १५

शीलगुण से रहित व्यक्ति का मनुष्य जन्म पाना निरर्थक ही है ।

२५. जीव दया दम सच्चं अचोरियं बभचेर सतोसे ।
सम्मद्दसण-णाणे तओ य सीलस्स परिवारो ।।

—शीलपाहुड १९

जीव दया, दम, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, सन्तोष, सम्यग्दर्शन-ज्ञान और तप—यह सब शील का परिवार है । अर्थात् शील के अग है ।

२६. सील मोक्खस्स सोवाण ।

—शीलपाहुड २०

शील-सदाचार मोक्ष का सोपान है ।

२७. णाणे णाणुवदेसे, अवट्टमाणो उ अन्नाणी ।

—निशीथभाष्य ४७९१

जो ज्ञान के अनुसार आचरण नही करता, वह ज्ञानी भी वस्तुतः अज्ञानी है ।

३३. वाया ए अकहता सुजणे, चरिदेहि कहियगा होति ।

—भगवती आराधना ३६६

श्रेष्ठ पुरुप अपने गुणो को वाणी से नही, किन्तु सच्चरित्र से ही प्रकट करते है ।

३४, किच्चा परस्स णिदं, जो अप्पाण ठवेदुमिच्छेज्ज ।
सो इच्छदि आरोग्गं, परम्मि कडुओसहे पीए ।।

— भगवती आराधना ३७१

जो दूसरो की निन्दा करके अपने को गुणवान प्रस्थापित करना चाहता है वह व्यक्ति दूसरो को कडवी औपधि पिलाकर स्वय रोगरहित होने की इच्छा करता है ।

३५. दट्ठूण अण्णदोसं, सप्पुरिसो लज्जिओ सय होइ ।

— भगवती आराधना ३७२

सत्पुरुप दूसरे के दोप देखकर स्वयं मे लज्जा का अनुभव करता है । (वह कभी उसे अपने मुँह से नही कह पाता ।)



६. संकिलेसकरं ठाणं, दूरओ परिवज्जए।

—दशवै० ५।१।१६

जहा भी कही क्लेश की सम्भावना हो, उस स्थान से दूर रहना चाहिए।

७. उप्फुल्लं न विणिज्झाए।

—दशवैकालिक ५।१।२३

आखे फाडते हुए, घूरते हुए नही देखना चाहिए।

८. निअट्टिज्ज अयंपिरो।

—दशवैकालिक ५।१।२४

किसी के यहा अपना अभीष्ट काम न बन पाए तो बिना कुछ बोले (झगडा किए) शान्तभाव से लौट आना चाहिए।

९. छंदं से पडिलेहए।

—दशवैकालिक ५।१।३७

व्यक्ति के अन्तर्मन को परखना चाहिए।

१०. उप्पण्णं नाइहीलिज्जा।

—दशवैकालिक ५।१।९९

समय पर प्राप्त उचित वस्तु की अवहेलना न कीजिए।

११. काले कालं समायरे।

—दशवैकालिक ५।१।४

जिस काल (समय) मे जो कार्य करने का हो, उस काल मे वही कार्य करना चाहिए।

१२. सप्पहासं विवज्जए।

—दशवैकालिक ८।४२

अट्टहास नही करना चहिए।

१९. अलं विवाएण णेकत मुहेहि।

—निशीथभाष्य २६१३

कृतमुख (विद्वान) के साथ विवाद नही करना चाहिए।

२०. अहऽसेयकरी अन्नेसि इंखिणी।

—सूत्रकृतांग १२।२।१

दूसरो की निन्दा हितकर नही है।

२१. नो अत्ताण आसाएज्जा, नो परं आसाएज्जा।

—आचारांग १।६।५

न अपनी अवहेलना करो न दूसरों की।

२२. न बाहिरं परिभवे, अत्ताणं न समुक्कसे।

—दशवैकालिक ८।३०

बुद्धिमान दूसरो का तिरस्कार न करे और अपनी बडाई न करे।

२३. न यावि पन्ने परिहास कुज्जा।

—सूत्रकृतांग १।१४।१९

बुद्धिमान किसी का उपहास नही करता

२४. णाति वेलं हसे मुणी।

—सूत्रकृतांग १।९।२९

मर्यादा से अधिक नही हंसना चाहिए।

४. बुभुक्षाकालो भाजनकालः ।

—नीतिवाक्यामृत २५।२९

भूख लगे, वही भोजन का समय है ।

५. यो मितं भुङ्क्ते, स वहुभुङ्क्ते ।

—नीतिवाक्यामृत २५।३८

जो परिमित खाता है, वह बहुत खाता है ।

६. तथा भुंजीत: ' यथा सायमन्येद्यु श्च न विपद्यते वन्हि ।

—नीतिवाक्यामृत २५।४२

वैसे खाना चाहिए, जिससे सध्या या सवेरे जठराग्नि न बुझे ।

७ अतिमात्रभोजी देहमग्नि विधुरयति ।

—नीतिवाक्यामृत १६।१२

मात्रा से अधिक खानेवाला जठराग्नि को खराब करता है ।

८ मोक्खपसाहणहेतू, णाणादि तप्पसाहणो देहो ।
देहट्ठा आहारो, तेण तु कालो अणुण्णातो ।।

—निशीथभाष्य ४१५४

ज्ञानादि मोक्ष के साधन है, और ज्ञान आदि का साधन देह है, देह का साधन आहार है । अत. साधक को समयानुकूल आहार की आज्ञा दी गई है ।

९ अप्पाहारस्स न इंदियाइ विसएसु सपत्तति ।
नेव किलम्मइ तवसा, रसिएसु न सज्जए यावि ।।

—बृहत्कल्पभाष्य १३३१

जो अल्पाहारी होता है, उसकी इन्द्रियां विपय-भोग की ओर नही दौडती । तप का प्रसग आने पर भी वह क्लात नही होता और न ही सरस भोजन मे आसक्त होता है ।

३० श्रमणधर्म

१. समे य जे सव्वपाणभूतेसु से हु समणे ।

—प्रश्नव्याकरण २।५

जो समस्त प्राणियो के प्रति समभाव रखता है, वस्तुत. वही श्रमण है ।

२. विहंगमा व पुप्फेसु दाणभत्तेसणे रया ।

—दशवैकालिक १।३

श्रमण-भिक्षु गृहस्थ से उसी प्रकार दान स्वरूप भिक्षा आदि ले, जिस प्रकार कि भ्रमर पुष्पो से रस लेता है ।

३. वयं च वित्तिं लब्भामो, न य कोइ उवहम्मइ ।

—दशवैकालिक १।४

हम (श्रमण) जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की इस प्रकार पूर्ति करे कि किसी को कुछ कष्ट न हो ।

४. महुगारसमा बुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया ।

—दशवैकालिक १।५

आत्मद्रष्टा साधक मधुकर के समान होते है, वे कही किसी एक व्यक्ति या वस्तु पर प्रतिबद्ध नही होते । जहा रस-गुण मिलता है, वही से ग्रहण कर लेते है ।

५. अवि अप्पणो वि देहंमि, नायरंति ममाइयं ।

—दशवैकालिक ६।२२

अकिंचन मुनि और तो क्या, अपने देह पर भी ममत्व नही रखते ।

११. आगमहीणो समणो णेवप्पाण पर वियाणादि ।

—प्रवचनसार ३।३०

शास्त्रज्ञान से शून्य श्रमण न अपने को जान पाता है और न पर को ।

१२. जा चिट्ठा सा सव्वा सजमहेउ ति होति समणाणं ।

—निशीथभाष्य २६४

श्रमणो की सभी चेष्टा-अर्थात् क्रियाएँ सयम के हेतु होती है ।

१३. समो सव्वत्थ मणो जम्स भवति स समणो ।

—उत्तराध्ययनचूर्णि २

जिसका मन सर्वत्र सम रहता है, वही श्रमण है ।

१४. जह मम ण पियं दुक्ख, जाणिय एमेव सव्वजीवाण ।
न हणइ न हणावेइ अ सम मणइ तेण सो समणो ।।

— अनुयोगद्वार १२९

जिस प्रकार मुझको दु ख प्रिय नही है, उसी पकार सभी जीवो को दु ख प्रिय नही है, जो ऐसा जानकर न स्वय हिंसा करता है, न किसी से हिसा करवाता है, वह समत्वयोगी ही सच्चा 'समण' है ।

१५. तो समणो जइ सुमणो, भावेण य जइ ण होइ पावमणो ।
सयणे अ जणे अ समो, समो अ माणावमाणेसु ।

—अनुयोगद्वार १३२

जो मन से सु-मन (निर्मल मनवाला) है, सकल्प से कभी पापोन्मुख नही होता, स्वजन तथा परजन मे, मान एव अपमान मे सदा सम रहता है, वह 'श्रमण' होता है ।

१६. उवसमसारं खु सामण्ण ।

—बृहत्कल्पभाष्य १।३५

श्रमणत्व का सार है—उपशम !

यथावदतिथौ साधौ, दीने च प्रतिपत्तिकृत्।
सदाऽनभिनिविष्टश्च, पक्षपाती गुणेषु च ॥
अदेश-कालयोश्चर्या, त्यजन् जानन् बलाबलम्।
वृत्तस्थज्ञानवृद्धाना, पूजकः पोष्यपोषकः ॥
दीर्घदर्शी विशेषज्ञः, कृतज्ञो लोकवल्लभः।
सलज्जः सदय सौम्यः, परोपकृतिकर्मठः ॥
अन्तरङ्गारिषड्वर्ग - परिहार - परायणः।
वशीकृतेन्द्रियग्रामो, गृहिधर्माय कल्पते ॥

—योगशास्त्र १४७-५६

गृहस्थधर्म को पालन करने का पात्र अर्थात् श्रावक वह होता है, जिसमे निम्नलिखित ३५ विशेषताएँ हों—

(१) न्याय-नीति से धन उपार्जन करनेवाला हो।
(२) शिष्टपुरुषो के आचार की प्रशसा करनेवाला हो।
(३) अपने कुल और शील मे समान, भिन्न गोत्रवालो के साथ विवाह-सम्बन्ध करनेवाला हो।
(४) पापो से डरनेवाला हो।
(५) प्रसिद्ध देशाचार का पालन करे।
(६) किसी की और विशेपरूप से राजा आदि की निन्दा न करे।
(७) ऐसे स्थान पर घर बनाए, जो न एकदम खुला हो और न एकदम गुप्त ही हो।
(८) घर मे बाहर निकलने के द्वार अनेक न हो।
(९) सदाचारी पुरुपो की सगति करता हो।
(१०) माता-पिता की सेवा-भक्ति करे।
(११) रगड़े-झगड़े और बखेड़ पैदा करनेवाली जगह से दूर रहे, अर्थात् चित्त मे क्षोभ उत्पन्न करनेवाले स्थान मे न रहे।

५. न य वुग्गहियं कह कहिज्जा ।

—दशवैकालिक १०।१०

विग्रह बढ़ानेवाली बात नही कहनी चाहिए ।

६. बहुय मा य आलवे ।

—उत्तराध्ययन १।१०

बहुत नही बोलना चाहिए ।

७. नापुट्ठो वागरे किंचि, पुट्ठो वा नालियं वए ।

—उत्तराध्ययन १।१४

बिना बुलाए बीच मे कुछ नही बोलना चाहिए, बोलने पर भी असत्य जैसा कुछ न कहे ।

८. वयगुत्तयाए णं णिव्विकारत्तं जणयई ।

—उत्तराध्ययन २९।५१

वचन-गुप्ति से निर्विकार स्थिति प्राप्त होती है ।

९. गिरा हि संखारजुया वि संसती,
अपेसला होइ असाहुवादणी ।

—बृहत्कल्पभाष्य ४११८

संस्कृत-प्राकृत आदि के रूप मे सुसंस्कृत भाषा भी यदि असभ्यता पूर्वक बोली जाती है तो वह भी जुगुप्सित हो जाती है ।

१०. पुव्विं बुद्धीए पासेत्ता, तत्तो वक्कमुदाहरे ।
अचक्खुओ व नेयारं, बुद्धिमन्नेसए गिरा ।।

—व्यवहारभाष्य पीठिका ७६

पहले बुद्धि से परखकर फिर बोलना चाहिए । अन्धा व्यक्ति जिस प्रकार पथ-प्रदर्शक की अपेक्षा रखता है उसीप्रकार वाणी बुद्धि की अपेक्षा रखती है ।

११. कुसलवइ उदीरंतो, जं वइगुत्तो वि समिओ वि ।

—बृहत्कल्पभाष्य ४४५१

१७. अणुवीइभासी से निग्गथे ।

—आचारांग २।३।१५।२

जो विचारपूर्वक बोलता है, वही सच्चा निर्ग्रन्थ है ।

१८ अणुणवीइभासी से निग्गथे समावइज्जा मोसं वयणाए ।

—आचारांग २।३।१५।२

जो विचारपूर्वक नही बोलता है, उसका वचन कभी न कभी असत्य से दूषित हो सकता है ।

१९. अणुचितिय वियागरे ।

—सूत्रकृतांग १।९।२५

जो कुछ बोले—पहले विचार कर बोले ।

२०. जं छन्नं तं न वत्तव्वं ।

—सूत्रकृतांग १।९।२६

किसी की कोई गोपनीय जैसी बात हो, तो नही कहना चाहिए ।

२१. तुमं तुमंति अमणुन्नं, सव्वसो तं न वत्तए ।

—सूत्रकृतांग १।९।२७

'तू-तू' —जैसे अभद्र शब्द कभी नही बोलना चाहिए ।

२२. विभज्जवाय च वियागरेज्जा ।

—सूत्रकृतांग १।१४।२२

विचारशील पुरुष सदा विभज्यवाद अर्थात् स्याद्वाद से युक्त वचन का प्रयोग करे ।

२३. निरुद्धगं वावि न दीहइज्जा ।

—सूत्रकृतांग १।१४।२३

थोडे से मे कही जानेवाली बात को व्यर्थ ही लम्बी न करे ।

२४. नाइवेल वएज्जा ।

—सूत्रकृतांग १।१४।२५

साधक आवश्यकता से अधिक न बोले ।

३१. मियं अदुट्ठं अणुवीइ भासए,
सयाणमज्झे लहई पसंसणं ।
—दशवैकालिक ७।५५

जो विचारपूर्वक सुन्दर और परिमित शब्द बोलता है, वह सज्जनो मे प्रशसा पाता है ।

३२ हिअ-मिअ-अफरुसवाई, अणुवीइभासि वाइओ विणओ ।
—दशवैकालिक नि० ३२२

हित-मित, मृदु और विचारपूर्वक बोलना वाणी का विनय है ।



जो प्रमाद वश हुए कपटाचरण के प्रति पश्चात्ताप (आलोचना) करके सरल हृदय हो जाता है, वह धर्म का आराधक है ।

५. आहच्च चडालियं कट्टु न निण्हविज्ज कयाइवि ।

—उत्तराध्ययन १।११

यदि साधक कभी कोई चाण्डालिक—दुष्कर्म करले, तो फिर उसे छिपाने की चेष्टा न करे ।

६. कड कडे त्ति भासेज्जा, अकडं नो कडे त्ति य ।

—उत्तराध्ययन १।११

विना किसी छिपाव या दुराव के किए हुए कर्म को किया हुआ कहिए तथा नही किए हुए कर्म को न किया हुआ कहिए ।

७. सोही उज्जुअभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई ।

—उत्तराध्ययन ३।१२

ऋजु अर्थात् सरल आत्मा की विशुद्धि होती है, और विशुद्ध आत्मा मे ही धर्म ठहरता है ।



५. सेणे जहा वट्‌यं हरे, आउक्खयम्मि तुट्‌ई।

—सूत्रकृतांग १।२।१।२

एक ही झपाटे मे वाज जैसे बटेर को मार डालता है, वैसे ही आयु क्षीण होने पर मृत्यु भी जीवन को हर लेता है।

६. नो सुलहा सुगई य पेच्चओ।

—सूत्रकृतांग १।२।१।३

मरने के वाद सद्‌गति सुलभ नही है। (अत· जो कुछ सत्कर्म करना है, यही करो)।

७. अत्तहियं खु दुहेण लब्भई।

—सूत्रकृतांग १।२।२।३०

आत्महित का अवसर मुश्किल से मिलता है।

८. मा पच्छ असाधुता भवे,
अच्चेही अणुसास अप्पगं।

—सूत्रकृतांग १।२।३।७

भविष्य मे तुम्हे कष्ट भोगना न पडे, इसलिए अभी से अपने को विषय-वासना से दूर रखकर धर्म से अनुशासित करो।

९. न य सखयमाहु जीवियं।

—सूत्रकृताग १।२।३।१०

जीवन-सूत्र टूट जाने के वाद फिर नही जुड पाता है।

१०. वोही य से नो सुलहा पुणो पुणो।

—दशवैकालिकचूलिका १।१४

सद्‌वोध प्राप्त करने का अवसर वार-वार मिलना सुलभ नहीं है।

११. चइज्ज देहं, न हु धम्मसासणं।

—दशवैकालिकचूलिका १।१७

देह को (आवश्यक होने पर) भले छोड दो, किन्तु अपने धर्म शासन को मत छोडो।

तू महासमुद्र को तैर चुका है, अब किनारे आकर क्यो बैठ गया ? उस पार पहुचने के लिए शीघ्रता कर। हे गौतम ! क्षण भर के लिए भी प्रमाद करना उचित नही है।

१७. मच्चुणाऽभाहओ लोगो, जराए परिवारिओ।

—उत्तराध्ययन १४।१३

जरा से घिरा हुआ यह ससार मृत्यु से पीडित हो रहा है।

१८. जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जन्ति राइओ।।

—उत्तराध्ययन १४।२५

जो रात्रिया बीत जाती है, वे पुन. लौटकर नही आती। किन्तु जो धर्म का आचरण करता रहता है, उसकी रात्रिया सफल हो जाती है।

१९. जस्सत्थि मच्चुणा सक्ख, जस्स वऽत्थि पलायणं।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया।।

—उत्तराध्ययन १४।२७

जिसकी मृत्यु के साथ मित्रता हो, जो उससे भागकर बच सकता हो, अथवा जो यह जानता हो कि मैं कभी मरूँगा नही, वही कल पर भरोसा कर सकता है (अन्यथा कल का क्या विश्वास ?)

२०. अप्पणा अनाहो संतो, कह नाहो भविस्ससि ?

—उत्तराध्ययान २०।१२

तू स्वय अनाथ है, तो फिर दूसरे का नाथ कैसे हो सकता है ?

२१. कालेण काल विहरेज्ज रट्ठे,
बलाबल जाणिय अप्पणो य।

—उत्तराध्ययन २०।१४

१ आत्म-दर्शन

१. जे अणण्णदंसी से अणण्णारामे,
जे अणण्णारामे, से अणण्णदसी।

—आचारांग १।२।६

जो 'स्व' से अन्यत्र दृष्टि नही रखता है, वह 'स्व' से अन्यत्र रमता भी नही है और जो 'स्व' से अन्यत्र रमता नही है, वह 'स्व' से अन्यत्र दृष्टि भी नही रखता है।

२. वदणियमाणि धरता, सीलाणि तहा तव च कुव्वंता।
परमट्टबाहिरा जे, णिव्वाण ते ण विंदंति॥

—समयसार १५३

भले ही व्रत नियम को धारण करे, तप और शील का आचरण करे, किन्तु जो परमार्थरूप आत्मबोध से शून्य है, वह कभी निर्वाण प्राप्त नही कर सकता।

३. ण याणंति अप्पणो वि, किन्नु अण्णेसि।

—आचारांगचूर्णि १।३।३

जो अपने को नही जानता, वह दूसरे को क्या जानेगा ?

४. सुत्ता अमुणी, मुणिणो सया जागरति।

—आचारांग १।३।१

आत्मदर्शन से शून्य अज्ञानी सदा सोये रहते है और आत्मद्रष्टा ज्ञानी सदा जागृत रहते है।

१ आत्म-दर्शन

१ जे अणण्णदंसी से अणण्णारामे,
जे अणण्णारामे, से अणण्णदंसी ।

—आचारांग १।२।६

जो 'स्व' से अन्यत्र दृष्टि नही रखता है, वह 'स्व' से अन्यत्र रमता भी नही है और जो 'स्व' से अन्यत्र रमता नही है, वह 'स्व' से अन्यत्र दृष्टि भी नही रखता है ।

२. वदणियमाणि धरता, सीलाणि तहा तव च कुव्वंता ।
परमट्टबाहिरा जे, णिव्वाण ते ण विदति ।।

—समयसार १५३

भले ही व्रत नियम को धारण करे, तप और शील का आचरण करे, किन्तु जो परमार्थरूप आत्मबोध से शून्य है, वह कभी निर्वाण प्राप्त नही कर सकता ।

३. ण याणति अप्पणो वि, किन्नु अण्णेसि ।

—आचारांगचूर्णि १।३।३

जो अपने को नहीं जानता, वह दूसरे को क्या जानेगा ?

४. सुत्ता अमुणो, मुणिणो सया जागरति ।

—आचारांग १।३।१

आत्मदर्शन से शून्य अज्ञानी सदा सोये रहते है और आत्मद्रष्टा ज्ञानी सदा जागृत रहते है ।

खण्ड 

अध्यात्म-दर्शन

विषय : २५ : शिक्षाएँ : ४१७

२ आत्म-स्वरूप

१. अत्थि मे आया उववाइए....
से आयावादी, लोयावादी. कम्मावादी, किरियावादी ।
—आचारांग १।१।१

यह मेरी आत्मा औपपातिक है, कर्मानुसार पुनर्जन्म ग्रहण करती है... आत्मा के पुनर्जन्मसम्वन्धी सिद्धान्त को स्वीकार करनेवाला ही वस्तुत. आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी एव क्रियावादी है ।

२. जे लोगं अब्भाइक्खति, से अत्ताणं अब्भाइक्खति ।
जे अत्ताणं अब्भाइक्खति, से लोग अब्भाइक्खति ।।
—आचारांग १।१।३

जो लोक (अन्य जीवसमूह) का अपलाप करता है, वह स्वय अपनी आत्मा का भी अपलाप करता है । जो अपनी आत्मा का अपलाप करता है, वह लोक (अन्य जीवसमूह) का भी अपलाप करता है ।

३. पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्त,
किं वहिया मित्तमिच्छसि ?
—आचारांग १।३।३

मानव ! तू स्वय ही अपना मित्र है । तू वाहर मे क्यों किसी मित्र (सहायक) की खोज कर रहा है ?

४. वन्धप्पमोक्खो अज्झत्थेव ।
—आचारांग १।५।२

वस्तुत: वन्धन और मोक्ष अन्दर मे ही है ।

आत्मा स्वय अपने द्वारा ही कर्मों की उदीरणा करता है, स्वयं अपने द्वारा ही उनकी गर्हा—आलोचना करता है, और अपने द्वारा ही कर्मो का सवर-आश्रव का निरोध करता है।

१०. हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे।

आत्मा की दृष्टि से हाथी और कुंथुआ-दोनों समान है।

११. नत्थि जीवस्स नासो त्ति

आत्मा का कभी नाश नही होता।

१२. नो इन्दियग्गेज्झ अमु...
अमुत्तभावा वि य हो...

आत्मा आदि अमूर्ततत्व इन्द्रिय...
होते है वे अविनाशि-नित्य भी...

१३ अप्पा नई वेयरणी, ...
अप्पा कामदुहा धेणू, ...

मेरी (पाप मे प्रवृत्त
वृक्ष के समान (क...
प्रवृत्त) कामधेनु ...

१४. अप्पा ...
अप्पा मि...

३१. इदो जीवो सव्वोवलद्धि भोगपरमेसरत्तणओ ।

—विशेषावश्यक० २९९३

सब उपलब्धि एव भोग के उत्कृष्ट ऐश्वर्य की प्राप्ति होने के कारण प्रत्येक जीव इन्द्र है ।

३२. जो अहंकारो भणित अप्पलक्खण ।

—आचारांगचूर्णि १।१।१

यह जो अन्दर मे 'अह' की—'मै' की—चेतना है यह आत्मा का लक्षण है ।

३३. यत्रात्मा तत्रोपयोगः, यत्रोपयोगस्तत्रात्मा ।

—निशीथचूर्णि ३३३२

जहा आत्मा है, वहाँ उपयोग (चेतना) है, जहाँ उपयोग है वहाँ आत्मा है ।

३४. अहं अव्वए वि, अहं अवट्ठिए वि ।

—ज्ञाताधर्मकथा १।५

मैं (आत्मा) अव्यय=अविनाशी हूं, अवस्थित=एकरस हू ।

३५. संकप्पमओ जीओ, सुखदुक्खमय हवेइ संकप्पो ।

—कार्तिकेयानुप्रेक्षा १८४

जीव सकल्पमय है, और सकल्प सुखदु खात्मक है ।

१६. निव्विकप्पसुहं सुह।

—बृहत्कल्पभाष्य ५७१७

वस्तुतः राग-द्वेष के विकल्प से मुक्त निर्विकल्प सुख ही सुख है।

१७. अउलं सुहसपत्ता उवमा जस्स नत्थि उ।

—उत्तराध्ययन ३६।६६

मोक्ष मे आत्मा अनन्त सुखमय रहता है। उस सुख की कोई उपमा नही है। और न कोई गणना ही है।

१८. ण वि अत्थि माणुसाणं, तं सोक्ख ण वि व सव्व देवाणं।
ज सिद्धाणं सोक्खं, अव्वाबाहं उवगयाण ॥

—औपपातिक १८०

ससार के सब मनुष्यो और सब देवताओ को भी वह सुख प्राप्त नही है, जो सुख अव्याबाध स्थिति को प्राप्त हुए मुक्त आत्माओ को है।

१९. केवलियनाण लंभो, नन्नत्थ खए कसायाणं।

—आवश्यकनिर्युक्ति १०४

क्रोधादि कषायो को क्षय किए बिना केवलज्ञान (पूर्ण ज्ञान) की प्राप्ति नही होती।

२०. जे जत्तिआ अ हेउ भवस्स,
ते चेव तत्तिआ मुक्खे।

—ओघनिर्युक्ति ५३

जो और जितने हेतु ससार के है वे और उतने ही हेतु मोक्ष के है।

२१. इरिआवहमाईआ, जे चेव हवंति कम्मबधाय।
अजयाण ते चेव उ, जयाणं निव्वाणगमणाय ॥

—ओघनिर्युक्ति ५४

१६. निव्विकप्पसुहं सुह।

—वृहत्कल्पभाष्य ५७१७

वस्तुतः राग-द्वेष के विकल्प से मुक्त निर्विकल्प सुख ही सुख है।

१७. अउलं सुहसपत्ता उवमा जस्स नत्थि उ।

—उत्तराध्ययन ३६।६६

मोक्ष मे आत्मा अनन्त सुखमय रहता है। उस सुख की कोई उपमा नही है। और न कोई गणना ही है।

१८. ण वि अत्थि माणुसाण, तं सोक्ख ण वि व सव्व देवाणं।
ज सिद्धाणं सोक्ख, अव्वाबाहं उवगयाण॥

—औपपातिक १८०

ससार के सब मनुष्यो और सब देवताओ को भी वह सुख प्राप्त नही है, जो सुख अव्याबाध स्थिति को प्राप्त हुए मुक्त आत्माओ को है।

१९. केवलियनाण लंभो, नन्नत्थ खए कसायाणं।

—आवश्यकनिर्युक्ति १०४

क्रोधादि कषायो को क्षय किए बिना केवलज्ञान (पूर्ण ज्ञान) की प्राप्ति नही होती।

२०. जे जत्तिआ अ हेउ भवस्स,
ते चेव तत्तिआ मुक्खे।

—ओघनिर्युक्ति ५३

जो और जितने हेतु ससार के है वे और उतने ही हेतु मोक्ष के है।

२१. इरिआवहमाईआ, जे चेव हवति कम्मवधाय।
अजयाण ते चेव उ, जयाणं निव्वाणगमणाय॥

—ओघनिर्युक्ति ५४

सम्यग्दर्शी साधक पापकर्म नही करता। अर्थात् वह पापो से सदा बचता रहता है।

११. कुणमाणोऽवि निवित्तिं,
परिच्चयंतोऽवि सयण-धण-भोए।
दितोऽवि दुहस्स उरं,
मिच्छद्दिट्ठी न सिज्झई उ॥

—आचारांगनिर्युक्ति २२०

एक साधक निवृत्ति की साधना करता है, स्वजन, धन और भोग-विलास का परित्याग करता है, अनेक प्रकार के कष्टो को सहन करता है, किन्तु यदि वह मिथ्यादृष्टि है, उसकी श्रद्धा विपरीत-पथगामी है तो अपनी साधना मे सिद्धि प्राप्त नही कर सकता।

१२. दंसणवओ हि सफलाणि, हुंति तवनाणचरणाइं।

—आचारांगनिर्युक्ति २२१

सम्यग्दृष्टि के ही तप, ज्ञान और चारित्र सफल होते है।

१३. सुद्धं तु वियाणंतो, सुद्धं चेवप्पय लहइ जीवो।
जाणंतो दु असुद्धं, असुद्धमेवप्पयं लहइ॥

—समयसार १८६

जो अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव करता है, वह शुद्धभाव को प्राप्त करता है और जो अशुद्धरूप का अनुभव करता है, वह अशुद्धभाव को प्राप्त होता है।

१४. जं कुणदि समदिट्ठी, त सव्वं णिज्जरणिमित्त।

—समयसार १९३

सम्यग्दृष्टि आत्मा जो कुछ भी तप, सयम आदि आचरण करता है, वह उसके कर्मों की निर्जरा के लिए ही होता है।

जो सम्यग्दर्शन मे भ्रष्ट है, वस्तुत वही भ्रष्ट है, पतित है, क्योंकि दर्शन से भ्रष्ट को मोक्ष प्राप्त नही होता।

२०. दविए दसणसुद्धी दंसणसुद्धस्स चरण तु ।

—ओघनिर्युक्तिभाष्य ७

द्रव्यानुयोग (तत्वज्ञान) से दर्शन (दृष्टि) शुद्ध होता है और दर्शन शुद्धि होने पर चारित्र की प्राप्ति होती है।

२१. सम्मद्दंसणलंभो वर खु तेलोक्कलभादो ।

—भगवतीआराधना ७४२

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तीन लोक के ऐश्वर्य से भी श्रेष्ठ है।

२२. स्थैर्य प्रभावना भक्ति कौशलं जिनशासने ।
तीर्थसेवा च पञ्चापि, भूषणानि प्रचक्षते ॥

—योगशास्त्र २।१६

(१) धर्म मे स्थिरता, (२) धर्म की प्रभावना—व्याख्यानादि द्वारा, (३) जिनशासन की भक्ति, (४) कुशलता—अज्ञानियो को धर्म समझाने मे निपुणता, (५) चार तीर्थ की सेवा— ये पाच सम्यक्त्व के भूपण है।

९. चारित्तं समभावो।

—पंचास्तिकाय १०७

समभाव ही चारित्र है।

१०. तणकणए समभावा पव्वज्जा एरिसा भणिआ।

—बोधपाहुड ४०

तृण और कनक (सोना) मे जव समानवुद्धि रहती है, तभी उसे प्रव्रज्या (दीक्षा) कहा जाता है।

११ दुज्जणवयणचडक्क, णिट्ठुर कडुयं सहंति सप्पुरिसा।

—भावपाहुड १०७

सज्जन-पुरुप दुर्जनों के निष्ठुर और कठोर वचनरूप चपेटो को भी समभावपूर्वक सहन करते है।

१२. समभावः सामाइयं।

—सूत्रकृतांगचूर्णि १।२।२

समभाव ही सामायिक है।

१३. धम्म णं आइक्खमाणा तुब्भे उवसमं आइक्खह।
उवसमं आइक्खमाणा विवेगं आइक्खह॥

—औपपातिकसूत्र ५८

प्रभो! आपने धर्म का उपदेश देते हुए उपशम का उपदेश दिया और उपशम का उपदेश देते हुए विवेक का उपदेश दिया। अर्थात् धर्म का सार उपशम-समभाव है और समभाव का सार है—विवेक!

१४. जह मम ण पियं दुक्खं जाणिअ एमेव सव्व जीवाण।
न हणइ न हणावेइ अ, सम मणइ तेण सो समणो॥

—अनुयोगद्वार १२९

१९. समभावो सामायियं, तं सकसायस्स णो विसुज्झेज्जा ।

—निशीथचूर्णि २८४६

समभाव सामायिक है, अत कपाययुक्त व्यक्ति का सामायिक विशुद्ध नही होता ।

२०. आया णे अज्जो ! सामाइए,

आया णे अज्जो ! सामाइस्स अट्ठे ।

—भगवती १।९

हे आर्य ! आत्मा ही सामायिक [समत्वभाव] है और आत्मा ही सामायिक का अर्थ [विशुद्धि] है ।

२१. सामाइएणं सावज्जजोगविरइं जणयइ ।

—उत्तराध्ययन २९।८

सामायिक की साधना से पापकारी प्रवृत्तियो का निरोध हो जाता है ।

२२. कि तिव्वेण तवेणं, कि जवेण किं चरित्तेणं ।

समयाइ विण मुक्खो, न हु हूओ कहवि न हु होइ ।।

—सामायिकप्रवचन, पृष्ठ ७८

चाहे कोई कितना ही तीव्र तप तपे, जप-जपे अथवा मुनि-वेप धारण कर स्थूल क्रियाकाण्डरूप चारित्र-पाले, परन्तु समता भावरूप सामायिक के विना न किसी को मोक्ष हुआ है और न होगा ।

२३. सेयबरो वा, आसंबरो वा, बुद्धो वा, तहेव अन्नो वा ।

समभाव-भाविअप्पा लहइ मोक्खं न संदेहो ।।

हरिभद्रसूरि

चाहे श्वेताम्बर हो, दिगम्बर हो, वुद्ध या, कोई अन्य हो । समता से भावित आत्मा ही मोक्ष को प्राप्त करती है ।।

१९. समभावो सामायियं, तं सकसायस्स णो विसुज्झेज्जा ।
—निशीथचूर्णि २८४६

समभाव सामायिक है, अत कषाययुक्त व्यक्ति का सामायिक विशुद्ध नही होता ।

२०. आया णे अज्जो ! सामाइए,
आया णे अज्जो ! सामाइस्स अट्ठे ।
—भगवती १।६

हे आर्य ! आत्मा ही सामायिक [समत्वभाव] है और आत्मा ही सामायिक का अर्थ [विशुद्धि] है ।

२१. सामाइएणं सावज्जजोगविरइं जणयइ ।
—उत्तराध्ययन २६।८

सामायिक की साधना से पापकारी प्रवृत्तियो का निरोध हो जाता है ।

२२. किं तिव्वेण तवेणं, किं जवेणं किं चरित्तेणं ।
समयाइ विण मुक्खो, न हु हूओ कहवि न हु होइ ।।
—सामायिकप्रवचन, पृष्ठ ७८

चाहे कोई कितना ही तीव्र तप तपे, जप-जपे अथवा मुनि-वेप धारण कर स्थूल क्रियाकाण्डरूप चारित्र-पाले, परन्तु समता भावरूप सामायिक के विना न किसी को मोक्ष हुआ है और न होगा ।

२३. सेयवरो वा, आसंवरो वा, बुद्धो वा, तहेव अन्नो वा ।
समभाव-भाविअप्पा लहइ मोक्खं न संदेहो ।।
हरिभद्रसूरि

चाहे श्वेताम्बर हो, दिगम्बर हो, वुद्ध या, कोई अन्य हो । समता से भावित आत्मा ही मोक्ष को प्राप्त करती है ।।

१६. तत्त्वरुचिः सम्यक्त्व, तत्त्वप्रख्यापकं भवेज् ज्ञानम् ।
पापक्रियानिवृत्ति-श्चारित्रमुक्तं जिनेन्द्रेण ॥
—ज्ञानार्णव, पृष्ठ ६१

जिनेन्द्र भगवान ने तत्त्वविषयक रुचि को **सम्यग्दर्शन**, तत्त्वविषयक विशेषज्ञान को **सम्यक्ज्ञान** और पापमय क्रिया से निवृत्ति को **सम्यक्चारित्र** कहा है ।

५. अप्पणो य परं नालं, कुतो अन्नाणुसासिउं ।
—सूत्रकृतांग १।१।२।१७

जो अपने पर अनुशासन नही रख सकता, वह दूसरो पर अनुशासन कैसे कर सकता है ?

६. अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य ॥
—उत्तराध्ययन १।१५

अपने-आप पर नियत्रण रखना चाहिये । अपने आप पर नियत्रण रखना वस्तुत· कठिन है । अपने पर नियन्त्रण रखनेवाला ही इस लोक तथा परलोक मे सुखी होता है ।

७. वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य ।
माहं परेहिं दम्मतो बंधणेहिं वहेहि य ॥
—उत्तराध्ययन १।१६

दूसरे वध और बधन आदि से दमन करे, इससे तो अच्छा है कि मै स्वय ही सयम और तप के द्वारा अपना (इच्छाओं का) दमन कर लूँ ।

८. जो सहस्सं सहस्साणं, सगामे दुज्जए जिए ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥
—उत्तराध्ययन ६।३४

भयंकर युद्ध मे हजारो-हजार दुर्दान्त शत्रुओ को जीतने की अपेक्षा अपने-आप को जीत लेना ही सवसे वडी विजय है ।

६. सव्व अप्पे जिए जियं ।
—उत्तराध्ययन ६।३६

एक अपने (विकारों) को जीत लेने पर सव को जीत लिया जाता है ।

११ मनोनिग्रह

१. निग्गहिए मणपसरे, अप्पा परमप्पा हवइ ।

—आराधनासार २०

मन के विकल्पों को रोक देने पर आत्मा, परत्मात्मा वन जाता है ।

२. मणणरवइए मरणे, मरंति सेणाइ इन्दियमयाइं ।

—आराधनासार ६०

मन रूप राजा के मर जाने पर इन्द्रियारूप सेना तो स्वयं ही मर जाती है । (अत: मन को मारने—वश मे करने का प्रयत्न करना चाहिए ।)

३ सुण्णीकयम्मि चित्ते, णूणं अप्पा पयासेइ ।

—आराधनासार ७४

चित्त को (विपयो से) शून्य कर देने पर उसमे आत्मा का प्रकाश झलक उठता है ।

४. मणं परिजाणइ से णिग्गंथे ।

—आचारांग २।३।१५।१

जो अपने मन को अच्छी तरह परखना जानता है, वही सच्चा निर्ग्रन्थ होता है ।

१२ अप्रमाद

१. जे पमत्ते गुणट्ठिए, से हु दंडे त्ति पवुच्चति ।

—आचारांग १।१।४

जो प्रमत्त है, विषयासक्त है, वह निश्चय ही जीवो को दण्ड (पीडा) देनेवाला होता है ।

२. तं परिण्णाय मेहावी,
इयाणि णो, जमहं पुव्वमकासी पमाएण ।

—आचारांग १।१।४

मेधावी साधक को आत्म-ज्ञान के द्वारा यह निश्चय करना चाहिये कि—"मैने पूर्व जीवन मे प्रमाद वश जो कुछ भूले की है, वे अब कभी नही करूँगा ।"

३. अंतरं च खलु इमं सपेहाए,
धीरो मुहुत्तमवि णो पमायए ।

—आचारांग १।२।१

अनन्त जीवन-प्रवाह मे मानव-जीवन को बीच का एक सुअवसर जान कर, धीर साधक मुहूर्त भर के लिए भी प्रमाद न करे ।

४. अलं कुसलस्स पमाएणं ।

—आचारांग १।२।४

बुद्धिमान साधक को अपनी साधना मे प्रमाद नही करना चाहिए ।

११. अप्पमत्तो जये निच्चं।

—दशवैकालिक ८।१६

सदा अप्रमत्तभाव से साधना मे यत्नशील रहना चाहिए।

१२. घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं,
भारंडपक्खो व चरेऽप्पमत्ते।

—उत्तराध्ययन ४।६

समय वडा भयकर है, और इधर प्रतिक्षण जीर्ण-शीर्ण होता हुआ शरीर है। अत साधक को सदा अप्रमत्त होकर भारंडपक्षी (सतत सतर्क रहनेवाला एक पौराणिक पक्षी) की तरह विचरण करना चाहिए।

१३ सुत्तेसु या वि पडिबुद्धजीवी।

—उत्तराध्ययन ४।६

प्रवुद्ध साधक सोये हुओ (प्रमत्त मनुष्यो) के वीच भी सदा जागृत-अप्रमत्त रहे।

१४. मज्ज विसय कसाया निद्दा विगहा य पंचमी भणिया।
इअ पचविहो ऐसो होई पमाओ य अप्पमाओ॥

—उत्तराध्ययननिर्युक्ति १८०

मद्य, विपय, कपाय, निद्रा और विकथा (अर्थहीन राग-द्वेप-वर्द्धक वार्ता) यह पाच प्रकार का प्रमाद है। इनसे विरक्त होना ही अप्रमाद है।

१५. अप्पमत्तस्स णत्थि भय, गच्छतो चिट्ठतो भुंजमाणस्स वा।

—आचारांगचूर्णि १।३।४

अप्रमत्त (सदा सावधान) को चलते, खडे होते, खाते, कही भी कोई भय नही है।

जिसकी मति, काम (वासना) से मुक्त है, वह शीघ्र ही ससार से मुक्त हो जाता है।

१०. णहि णिरवेक्खो चागो,
ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसुद्धी।
अविसुद्धस्स हि चित्ते,
कहं णु कम्मक्खओ होदि॥

—प्रवचनसार ३।२०

जब तक निरपेक्ष (आशा-प्रत्याशारहित) त्याग नही होता है, तब तक साधक की चित्तशुद्धि नही होती है। और जब तक चित्तशुद्धि (उपयोग की निर्मलता) नही होती है, तब तक कर्म-क्षय कैसे हो सकता है?

११. तण-कट्ठेहि व अग्गी, लवणजलो व नईसहस्सेहि।
न इमो जीवो सक्को, तिप्पेउं कामभोगेउं॥

—आतुर-प्रत्याख्यान ५०

जिस प्रकार तृण व काष्ठ से अग्नि, तथा हजारो नदियो से समुद्र तृप्त नही होता है, उसी प्रकार रागासक्त आत्मा कामभोगो से कभी तृप्त नही हो पाता।

१२. विणीय तण्हो विहरे।

—दशवैकालिक ८।६०

तृष्णा से मुक्त होकर विचरना चाहिए।

१३. मेहावी अप्पणो गिद्धिमुद्धरे।

—सूत्रकृतांग ८।१३

गृद्धि-आसक्ति से अपने को उवारना वचाना चाहिए।

१४. से हु चक्खू मणुस्साण जे कंखाए य अंतए।

—सूत्रकृताग १५।१४

१४ काम-विषय

१. जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे ।

—आचारांग १।१।५

जो काम-गुण है, इन्द्रियो के शब्दादि विषय है, वह आवर्त — ससार-चक्र है । और जो आवर्त है वह काम-गुण है ।

२. आतुरा परितावेंति ।

— आचारांग १।१।६

विषयातुर मनुष्य ही दूसरे प्राणियो को परिताप देते है ।

३. कामा दुरतिक्कम्मा ।

—आचारांग १।२।५

कामनाओ का पार पाना बहुत कठिन है ।

४. कामेसु गिद्धा निचय करेंति ।

—आचारांग १।३।२

कामभोगो मे गृद्ध—आसक्त रहनेवाले व्यक्ति कर्मों का बन्धन करते है ।

५. मोहं जंति नरा असंवुडा ।

—सूत्रकृतांग १।२।१।२७

इन्द्रियो के दास असवृत मनुष्य हिताहित-निर्णय के क्षणो मे मोह-मुग्ध हो जाते है ।

१२. अक्खाणि बहिरप्पा, अंतरअप्पा हु अप्पसंकप्पो।
—मोक्षपाहुड ५

इन्द्रियो में आसक्ति वहिरात्मा है और अन्तरग मे आत्मानुभव रूप आत्मसकल्प अन्तरात्मा है।

१३. चक्खिंदियदुद्दंतत्तणस्स, अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं जलणंमि जलंते, पडइपयगो अबुद्धीओ॥
—ज्ञाताधर्मकथा १।१७।४

चक्षुष् इन्द्रिय की आसक्ति का इतना बुरा परिणाम होता है कि मूर्ख पतंगा जलती हुई आग मे गिरकर मर जाता है।

१४. विषीदन्ति—धर्म प्रति नोत्सहन्ते एतेष्विति विषयाः।
—उत्तराध्ययन अ० ४ टीका

जिनमें पडने से प्राणी धर्म के उत्साह से हीन हो जाए, वे विषय है।

१५. विषीयन्ते निबध्यन्ते विषयिणोऽस्मिन्निति विषयः।
—भगवती ८।२ टीका

जिसमे विषयी प्राणी वध जाये, उसका नाम विषय है।

१६. न काम भोगा समयं उवेंति,
न यावि भोगा विगइं उवेंति।
जे तप्पओसी य परिग्गही य,
सो तेसु मोहा विगइं उवेइ।
—उत्तराध्ययन ३२।१०१

काम भोग-शब्दादि विषय न तो स्वयं मे समता के कारण होते हैं और न विकृति के ही। किन्तु जो उनमे द्वेष या राग करता है, वह उनमे मोह से राग-द्वेष रूप विकार को उत्पन्न करता है।

प्रमत्त मनुष्य धन के द्वारा अपनी रक्षा नही कर सकता, न इस लोक मे और न पर लोक मे।

२४. इहलोए ताव नट्ठा, परलोए वि य नट्ठा।

—प्रश्नव्याकरण १।४

विषयासक्त इस लोक मे भी नष्ट होते है और परलोक मे भी।

२५. उवणमंति मरणधम्मं अवित्तात्ता कामाण।

—प्रश्नव्याकरण १।४

अच्छे से अच्छे सुखोपभोग करनेवाले देवता और चक्रवर्ती आदि भी अन्त मे काम भोगो से अतृप्त ही मृत्य को प्राप्त होते है।



कर्म के क्षय से मोक्ष होता है, आत्मज्ञान से कर्म का क्षय होता है और ध्यान से आत्मज्ञान प्राप्त होता है। अत. ध्यान आत्मा के लिए अत्यत हितकारी माना गया है।

५. झाणणिलीणो साहू, परिचांग कुणइ सव्वदोसाण।
तम्हा दु झाणमेव हि, सव्वदिचारस्स पडिक्कमण ।।
—नियमसार ६३

ध्यान मे लीन हुआ साधक सव दोपो का निवारण कर सकता है। इसलिए ध्यान ही समग्र अतिचारो (दोपो) का प्रतिक्रमण है।

६. वीतरागो विमुच्येत, वीतरागं विचिन्तयन्।
—योगशास्त्र ९।१३

वीतराग का ध्यान करता हुआ योगी स्वय वीतराग होकर कर्मो से या वासनाओ से मुक्त हो जाता है।

७ ओयं चित्त समादाय झाणं समुप्पज्जइ।
धम्मे ठिओ अ विमणे, निव्वाणमभिगच्छइ ।।
—दशाश्रुतस्कध ५।१

चित्तवृत्ति निर्मल होने पर ही ध्यान की सही स्थिति प्राप्त होती है। जो विना किसी विमनस्कता के निर्मल मन से धर्म मे स्थित है, वह निर्वाण को प्राप्त करता है।

८. णेम चित्तं समादाय, भुज्जो लोयंसि जायइ।
—दशाश्रुतस्कंध ५।२

निर्मल चित्तवाला साधक संसार मे पुनः जन्म नही लेता।

६. एगो सय पच्चणुहोइ दुक्खं।

—सूत्रकृतांग १।५।२।२२

आत्मा अकेला ही अपने किए हुए दुःख को भोगता है।

७. जं जारिस पुव्वमकासि कम्मं,
तमेव आगच्छति संपराए।

—सूत्रकृतांग १।५।२

अतीत मे जैसा भी कुछ कर्म किया गया है, भविष्य में वह उसी रूप मे उपस्थित होता है।

८. तुट्टंति पावकम्माणि, नवं कम्ममकुव्वओ।

—सूत्रकृतांग १।१५।६

जो नए कर्मो का बन्धन नही करता है, उसके पूर्वबद्ध पापकर्म भी नष्ट हो जाते है।

९. अकुव्वओ णवं णत्थि।

—सूत्रकृतांग १।१५।७

जो अन्दर मे राग-द्वेष रूप-भावकर्म नही करता, उसे नए कर्म का बन्ध नही होता।

१० दुक्खी दुक्खेणं फुडे, नो अदुक्खी दुक्खेणं फुडे।

—भगवती ७।१

जो दुःखित—कर्म-बद्ध है, वही दुःख—बन्धन को पाता है, जो दुःखित बद्ध नही है वह दुःख—बन्धन को नही पाता।

११. सकम्मुणा किच्चइ पावकारी····
कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।

—उत्तराध्ययन ४।३

पापात्मा अपने ही कर्मो से पीडित होता है। क्योकि ···
कृत-कर्मो का फल भोगे विना छुटकारा नही है।

१७. कर्मभीताः कर्मण्येव वर्द्धयन्ति ।

—सूत्रकृतांगचूर्णि १।१२

कर्मो से डरते रहनेवाले प्राय. कर्म को ही वढाते रहते है ।

१८ जीवाण चेयकडा कम्मा कज्जति,
नो अचेयकडा कम्मा कज्जंति ।

—भगवती १६।२

आत्माओ के कर्म चेतनाकृत होते है, अचेतना-कृत नही ।

१६. हेउप्पभवोवन्धो ।

—दशवैकालिक निर्युक्ति ४६

आत्मा को कर्म-वन्ध मिथ्यात्व आदि हेतुओ से होता है ।

२०. सयमेव कडेहिं गाहइ, नो तस्स मुच्चेज्जऽपुट्ठयं ।

— सूत्रकृतांग १।२।१।४

आत्मा अपने स्वय के कर्मो से ही वन्धन मे पड़ता है । कृत-कर्मो को भोगे विना मुक्ति नही है ।

२१. पक्के फलम्हि पडिए, जह ण फल वज्झए पुणो विंटे ।
जीवस्स कम्मभावे, पडिए ण पुणोदयमुवेई ॥

—समयसार १६८

जिस प्रकार पका हुआ फल गिर जाने के वाद पुन वृन्त से नही लग सकता, उसी प्रकार कर्म भी आत्मा से वियुक्त होने के वाद पुनः आत्मा (वीतराग) को नही लग सकते ।



५. दृष्टिरागस्तु पापीयान्, दुरुच्छेद्यः सतामपि ।

—वीतरागस्तोत्र

दृष्टिराग अर्थात् अपने पथ का अंधविश्वास महापापी है और सत्पुरुषो के लिए भी दुस्त्याज्य है ।

६. यं दृष्ट्वा वर्धते स्नेहः, क्रोधश्च परिहीयते ॥
स विज्ञेयो मनुष्येण, ममैष पूर्वमित्रकः ॥

—चन्दचरित्र पृष्ठ ८२

जिसे देखकर स्नेह की वृद्धि एव क्रोध की शान्ति हो, उसे अपना पूर्वजन्म का मित्र समझना चाहिए ।

७ रत्तो वधदि कम्मं, मुंचदि जीवो विरागसपत्तो ।

—समयसार १५०

जीव रागयुक्त होकर कर्म वाधता है । और विरक्त होकर कर्मो से मुक्त होता है ।

८. ण य वत्थुदो दु वधो, अज्झवसाणेण वंधोत्थि ।

-- समयसार २६५

कर्मवन्ध वस्तु से नही, राग और द्वेप के अध्यवसाय--सकल्प से होता है ।

६. असुहो मोह-पदोसो, सुहो व असुहो हवदि रागो ।

—प्रवचनसार २।८८

मोह और द्वेप अशुभ ही होते है । राग शुभ और अशुभ दोनो होता है ।

१०. जतिभागगया मत्ता, रागादीण तहा चयो कम्मे ।

- वृहत्कल्पभाष्य २५१५

राग की जैसी मंद, मध्यम और तीव्र मात्रा होती है, उसी के अनुसार मद, मध्यम और तीव्र कर्म वन्ध होता है ।

१९ पुण्य-पाप

१. इह लोगे सुचिन्ना कम्मा,
इह लोगे सुहफल विवागसंजुत्ता भवंति ।
इह लोगे सुचिन्नाकम्मा,
परलोगे सुहफल विवागसजुत्ता भवंति ।

—स्थानांग ४।२

इस जीवन मे किए हुए सत्कर्म इस जीवन मे भी सुखदायी होते है। इस जीवन मे किए हुए सत्कर्म अगले जीवन मे भी सुखदायी होते हैं।

२. सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला भवंति ।
दुच्चिण्णा कम्मा दुच्चिण्णफला भवंति ।

—औपपातिक ५६

अच्छे कर्म का अच्छा फल होता है ।
बुरे कर्म का बुरा फल होता है ।

३. पावोगहा हि आरभा, दुक्खफासा य अंतसो ।

—सूत्रकृतांग १।८।७

पापानुष्ठान अन्तत दुख ही देते है ।

४. सव्व सुचिण्णं सफलं नराणं ।

—उत्तराध्ययन १३।१०

९. चरिया पमादबहुला, कालुस्सं लोलदा य विसयेसु।
परपरितावपवादो, पावस्स य आसवं कुणदि ॥

—पञ्चास्तिकाय १३९

प्रमादबहुलचर्या, मन की कलुषता, विषयो के प्रति लोलुपता, परपरिताप (परपीडा) और परनिन्दा—इनमे पाप का आश्रव (आगमन) होता है।

१०. पासयति पातयति वा पाप।

—उत्तराध्ययन चूर्णि २

जो आत्मा को बाधता है, अथवा गिराता है, वह पाप है।

११. पुन्न मोक्खगमणविग्घाय हवति।

—निशीथचूर्णि ३३२९

परमार्थ दृष्टि से पुण्य भी मोक्ष प्राप्ति मे विघातक—बाधक है।

१२. न हु पाव हवइ हियं, विसं जहा जीवियत्थिस्स।

—मरणसमाधि ६१३

जैसे कि जीवितार्थी के लिए विष हितकर नही होता, वैसे ही कल्याणार्थी के लिए पाप हितकर नही है।

१३. संसारसंतईमूलं, पुण्णं पावं पुरेकडं।

—ऋषिभाषितानि ९।२

पूर्वकृत पुण्य और पाप ही ससार परम्परा का मूल है।

१४. हेमं वा आयसं वावि, बंधणं दुक्खकारणा।
महग्घस्सावि दंडस्स, णिवाए दुक्खसपदा ॥

—ऋषिभाषितानि ४५।५

बन्धन चाहे सोने का हो या लोहे का, बन्धन तो आखिर दुःखकारक ही है। बहुत मूल्यवान दण्ड (डडे) का प्रहार होने पर भी दर्द तो होता ही है।

२० मोह

१. मोहेण गब्भ मरणाइ एइ ।

—आचारांग ५।३

मोह से जीव बार-बार जन्म-मरण को प्राप्त होता है ।

२ मोहो विण्णाण विवच्चासो ।

—निशीथचूर्णि २६

विवेक ज्ञान का विपर्यास ही मोह है ।

३. इत्थ मोहे पुणो पुणो सन्ना,
नो हव्वाए नो पाराए ।

—आचारांग १।२।२

बार-बार मोहग्रस्त होनेवाला साधक न इस पार रहता है न उस पार, अर्थात् न इसलोक का रहता है न परलोक का ।

४. जहा य अंडप्पभवा बलागा ।
अंडं बलागप्पभवं जहा य ।
एमेव मोहाययणं खु तण्हा,
मोहं च तण्हाययणं वयंति ॥

—उत्तराध्ययन ३२।६

जिस प्रकार बलाका (बगुली) अण्डे से उत्पन्न होती है और अण्डा बलाका से, इसी प्रकार मोह तृष्णा से उत्पन्न होता है और तृष्णा मोह से ।

१५. अन्नस्स दुक्खं, अन्नो न परियाइयति ।

—सूत्रकृतांग २।१।१३

कोई किसी दूसरे के दु ख को बटा नही सकता ।

१६, अन्न इम सरीरं, अन्नो जीवु त्ति एव कयवुद्धी ।
दुक्ख-परिकिलेसकरं, छिंद ममत्तं सरीराओ ॥

—आवश्यकनिर्युक्ति १५४७

'यह शरीर अन्य है, आत्मा अन्य है।' साधक इस तत्त्वबुद्धि के द्वारा दु.ख एव क्लेशजनक शरीर की ममता का त्याग करे ।

१७. जीवियं चेव रूवं च विज्जुसंपायचंचल ।

—उत्तराध्ययन १८।१३

जीवन और रूप विजली की चमक की तरह चचल है ।

१८. दाराणि य मुया चेव, मित्ता य तह वन्धवा ।
जीवतमणुजीवंति, मय नाणुव्वयन्ति य ॥

—उत्तराध्ययन १८।१४

स्त्री, पुत्र, मित्र और वन्धुजन सभी जीते जी के साथी है। मरने के वाद कोई किसी के पीछे नही जाता ।

१९. जम्म दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतुणो ॥

—उत्तराध्ययन १९।१६

संसार मे जन्म का दु.ख है, जरा, रोग और मृत्यु का दु.ख है। चारो और दु ख ही दु ख है। अतएव वहाँ प्राणी निरन्तर कष्ट ही पाते रहते है ।

२०. जलवुब्बुयसमाणं कुसग्गजलविन्दुचंचलं जीवियं ।

—औपपातिक २३

२२ वीतरागता

१ विमुत्ता हु ते जणा, जे जणा पारगामिणो ।

—आचारांग १।२।२

जो साधक कामनाओ को पार कर गए है, वस्तुत· वे ही मुक्त-पुरुप है।

२ लोभमलोभेण दुगु छमाणे, लद्धे कामे नाभिगाहइ ।

—आचारांग १।२।२

जो लोभ के प्रति अलोभवृत्ति के द्वारा विरक्ति रखता है, वह और तो क्या, प्राप्त कामभोगो का भी सेवन नही करता हैं ।

३ अणोहंतरा एए नो य ओहं तरित्तए ।
अतीरंगमा एए नो य तीरं गमित्तए ।
अपारंगमा एए नो य पारं गमित्तए ।

—आचारांग १।२।३

जो वासना के प्रवाह को नही तैर पाए, वे ससार के प्रवाह को नही तैंर सकते ।

जो इन्द्रियजन्य कामभोगो को पार कर तट पर नही पहुचे है, वे संसार-सागर के तट पर नही पहुच सकते ।

जो राग-द्वेप को पार नही कर पाए हैं, वे ससार-सागर को पार नही हो सकते ।

ामे न कामए, लद्धे वावि अलद्धं कण्हुई ।

—सूत्रकृतांग १।२।३।६

ख़ाभिलाषी होकर कामभोगो की कामना न करे । प्राप्त ा भी अप्राप्त जैसा कर दे । अर्थात् उपलब्ध भोगो के प्रति स्पृह रहे ।

लद्धे कामे न पत्थेज्जा ।

—सूत्रकृतांग १।६।३२

ा होने पर भी कामभोगो की अभ्यर्थना (स्वागत) न करे ।

वीयरागयाए णं नेहाणुबंधणाणि,
तण्हाणुबंधणाणि य वोच्छिंदई ।

—उत्तराध्ययन २६।४५

वीतराग भाव की साधना से स्नेह (राग) के वन्धन और तृष्णा के वन्धन कट जाते है ।

१२ न लिप्पई भव मज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ।

—उत्तराध्ययन ३२।४७

जो आत्मा विषयो के प्रति अनासक्त है, वह ससार मे रहता हुआ भी उसमे लिप्त नही होता । जैसे कि पुष्करिणी के जल मे रहा पलाश-कमल ।

१३ समो य जो तेसु स वीयरागो ।

— उत्तराध्ययन २६।६१

जो मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दादि विषयो मे सम रहता है, वह वीत-राग है ।

१७ तह रायानिलरहिओ, झाणपईवो वि पज्जलई ।

—भावपाहुड १२३

हवा से रहित स्थान मे जैसे दीपक निर्विघ्न जलता रहता है, वैसे ही राग की वायु से मुक्त रहकर (आत्ममंदिर मे) ध्यान का दीपक सदा प्रज्वलित रहता है ।

१८ भोगेहिं य निरवयक्खा, तरंति संसारकंतार ।

—ज्ञाताधर्मकथा १।६

जो विपय-भोगो से निरपेक्ष रहते है, वे ससार-वन को पार कर जाते है ।



१७ तह रायानिलरहिओ, झाणपईवो वि पज्जलई ।

—भावपाहुड १२३

हवा से रहित स्थान मे जैसे दीपक निर्विघ्न जलता रहता है, वैसे ही राग की वायु से मुक्त रहकर (आत्ममदिर मे) ध्यान का दीपक सदा प्रज्वलित रहता है ।

१८ भोगेहि य निरवयक्खा, तरंति संसारकंतार ।

—ज्ञाताधर्मकथा १।६

जो विपय-भोगो से निरपेक्ष रहते है, वे ससार-वन को पार कर जाते है ।



४ जदत्थि णं लोगे, तं सव्वं दुअओआरं।

—स्थानांग २।१

विश्व मे जो कुछ भी है, वह इन दो शब्दो समाया हुआ है—है—चेतन और जड।

५ ण एव भूतं वा भव्वं वा भविस्सति वा
जं जीवा अजीवा भविस्संति,
अजीवा वा जीवा भविस्संति।

—स्थानांग १०

न ऐसा कभी हुआ है, न होता है और न कभी होगा ही कि जो चेतन है—वे कभी अचेतन-जड हो जाए और जो जड अचेतन वे चेतन हो जाए।

६ अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ,
नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ।

—भगवती १।३

अस्तित्व, अस्तित्व मे परिणत होता है और नास्तित्व, नास्तित्व मे परिणत होता है, अर्थात् सत् सदा सत् ही रहता है और असत्, सदा असत्।

७ अजीवा जीव पइट्ठिया,
जीवा कम्म पइट्ठिया।

—भगवती १।३

अजीव जड पदार्थ जीव के आधार पर रहे हुए है और जीव (संसारी प्राणी) कर्म के आधार पर रहे हुए है।

८ अथिरे पलोट्टइ नो थिरे पलोट्टइ।
अथिरे भज्जइ, नो, थिरे भज्जइ॥

अस्थिर बदलता है, स्थिर नही बदलता।
अस्थिर टूट जाता है, स्थिर नही टूटता।

१४ नत्थि केइ परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे।
जत्थं णं अयं जीवे न जाए वा, न मए वा वि ॥

—भगवती १२।७

इस विराट् विश्व मे परमाणु जितना भी ऐसा कोई प्रदेश नही है, जहाँ यह जीव न जन्मा हो न मरा हो।

१५ अत्ताकडे दुक्खे, नो परकडे।

—भगवती १७।५

आत्मा का दु ख स्वकृत है, अपना किया हुआ है, परकृत अर्थात् किसी अन्य का किया हुआ नही है।

१६ सुहदुक्खसंपओगो,
न विज्जई निच्चवायपक्खमि।
एगंतुच्छेअमि य,
सुहदुक्खविगप्पणमजुत्तं ॥

—दशवैकालिक निर्युक्ति ६०

एकान्त नित्यवाद के अनुसार सुख-दु ख का संयोग सगत नही वैठता और एकान्त उच्छेदवाद-अनित्यवाद के अनुसार भी सुख-दु ख की वात उपयुक्त नही होती। अत नित्यानित्यवाद ही इसका सही समाधान कर सकता है।

१७ दव्वं सलक्खणयं, उप्पादव्वयधुवत्त संजुत्तं।

—पचास्तिकाय १०

द्रव्य का लक्षण सत् है, और वह सदा उत्पाद, व्यय एव ध्रुवत्व-भाव से युक्त होता है।

१८ दव्वेण विणा न गुणा,
गुणेहि दव्वं विणा न संभवदि।

—पंचास्तिकाय १३

द्रव्य के विना गुण नही होते है, और गुण के विना द्रव्य नही होते।

अपने-अपने पक्ष मे ही प्रतिवद्ध, परस्पर निरपेक्ष सभी नय (मत) मिथ्या है, असम्यक् है। परन्तु ये ही नय जव परस्पर सापेक्ष होते है, तव सत्य एव सम्यक् वन जाते है।

२४ ण वि अत्थि अण्णवादो, ण वि तव्वाओ जिणोवएसम्मि।

—सन्मतितर्क ३।२६

जैन-दर्शन मे न एकान्त भेदवाद मान्य है और न एकान्त अभेद-वाद। (अत जैन-दर्शन भेदाभेदवादी दर्शन है।)

२५ जावइया वयणपहा, तावइया चेव होंति णयवाया।
जावइया णयवाया, तावइया चेव परसमया॥

—सन्मतितर्क ३।४७

जितने वचन विकल्प है, उतने ही नयवाद है, और जितने भी नयवाद है, ससार मे उतने ही पर-समय है, अर्थात् मत-मतान्तर है।

२६ दव्वं खित्तं कालं, भाव पज्जाय देस संजोगे।
भेदं पडुच्च समा, भावाणं पण्णवणपज्जा॥

—सन्मतितर्क ३।६०

वस्तुतत्व की प्ररूपणा द्रव्य (पदार्थ की मूलजाति), क्षेत्र (स्थिति-क्षेत्र), काल (योग्य-समय), भाव (पदार्थ की मूलशक्ति), पर्याय (शक्तियो के विभिन्न परिणमन अर्थात कार्य), देश (व्यावहारिक स्थान), सयोग (आस-पास की परिस्थिति), और और भेद (प्रकार) के आधार पर ही सम्यक् होती है।

२७. भद्दं मिच्छा दंसणसमूहमइयस्स अमयसारस्स।
जिणवयणस्स भगवओ संविग्गसुहाहिगम्मस्स॥

—सन्मतितर्क ३।६९

२४ सार्थक परिभाषाएँ

१. जहा पोम जले जाय नोवलिप्पइ वारिणा ।
एवं अलित्त कामेहि, तं वयं बूम माहणं ।।

—उत्तराध्ययन २५।२७

ब्राह्मण वही है—जो ससार मे रहकर भी काम भोगो से निर्लिप्त रहता है, जैसे कि कमल जल मे रहकर भी उससे लिप्त नही होता ।

२. न वि मु डएण समणो, न ओंकारेण वंभणो ।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो ।।

—उत्तराध्ययन २५।३०

सिर मु डा लेने से कोई श्रमण नही होता, ओंकार का जप करने से कोई ब्राह्मण नही होता, जगल मे रहने से कोई मुनि नही होता और कुशचीवर—वल्कल धारण करने से कोई तापस नही होता ।

३. समयाए समणो होइ, बभचेरेण वंभणो ।
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ।।

—उत्तराध्ययन २५।३२

समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तपस्या से तापस कहलाता है ।

एगे अट्ठकरे वि माणकरे वि।
एगे णो अट्ठकरे, णो माणकरे।

—स्थानांग ४।३

कुछ व्यक्ति सेवा आदि महत्त्वपूर्ण कार्य करते है, किन्तु उसका अभिमान नही करते।
कुछ अभिमान करते है, किन्तु कार्य नही करते।
कुछ कार्य भी करते है, अभिमान भी करते है।
कुछ न कार्य करते है, न अभिमान ही करते है।

६. अप्पणो णाम एगे पत्तिय करेइ, णो परस्स।
परस्स णाम एगे पत्तिय करेइ, णो अप्पणो।
एगे अप्पणो पत्तिय करेइ, परस्सवि।
एगे णो अप्पणो पत्तिय करेइ, णो परस्स।

—स्थानाग ४।३

कुछ मनुष्य ऐसे होते है, जो सिर्फ अपना ही भला चाहते है, दूसरो का नही।

कुछ उदार व्यक्ति अपना भला चाहे बिना भी दूसरो का भला करते है।

कुछ अपना भला भी करते है और दूसरो का भी।
और कुछ न अपना भला करते है, न दूसरो का।

७. गज्जित्ता णाम एगे णो वासित्ता।
वासित्ता णाम एगे णो गज्जित्ता।
एगे गज्जित्ता वि वासित्ता वि।
एगे णो गज्जित्ता, णो वासित्ता।

(क) हिययमपावमकलुसं, जीहा वि य मधुरभासिणी णिच्चं।
जंमि पुरिसम्मि विज्जति, से मधुकुंभे मधुपिहाणे॥

जिसका अन्तर हृदय निष्पाप और निर्मल है, साथ ही वाणी भी मधुर है, वह मनुष्य मधु के घड़े पर मधु के ढक्कन के समान है।

(ख) हिययमपावमकलुस, जीहाऽवि य कडुयभासिणी णिच्चं।
जंमि पुरिसम्मि विज्जति, से मधुकुंभे विसपिहाणे॥

जिसका हृदय तो निष्पाप और निर्मल है, किन्तु वाणी से कटु एवं कठोर भाषी है, वह मनुष्य मधु के घड़े पर विष के ढक्कन के समान है।

(ग) ज हिययं कलुसमय, जीहा वि य मधुरभासिणी णिच्च।
जंमि पुरिसम्मि विज्जति, से विषकुंभे महुपिहाणे॥

जिसका हृदय कलुषित और दम्भ युक्त है, किन्तु वाणी से मीठा बोलता है। वह मनुष्य विष के घड़े पर मधु के ढक्कक के समान है।

(घ) ज हिययं कलुसमय, जीहा.वि य कडुयभासिणी णिच्च।
जमि पुरसंमि विज्जति, से विसकुंभे विसपिहाणे॥

—स्थानांग ४।४

जिसका हृदय भी कलुषित है और वाणी से भी सदा कटु बोलता है, वह पुरुष विष के घड़े पर विष के ढक्कन के समान है।

९. समुद्दं तरामीतेगे समुद्द तरइ।
समुद्द तरामीतेगे गोप्पय तरइ।
गोप्पय तरामीतेगे समुद्द तरइ।
गोप्पय तरामीतेगे गोप्पय तरइ।

—स्थानांग ४।४

इन सात बातो से समय की श्रेष्ठता (सुकाल) प्रकट होती है—
असमय पर न बरसना, समय पर बरसना,
असाधुजनो का महत्व न बढना, साधुजनो का महत्व बढना,
माता-पिता आदि गुरुजनो के प्रति सद् व्यवहार होना।
मन की शुभता और वचन की शुभता।

१२. नवहिं ठाणेहि रोगुप्पत्ती सिया—
अच्चासणाए
अहियासणाए
अइनिद्दाए
अइजागरिएण
उच्चारनिरोहेणं
पासवणनिरोहेण
अद्धाणगमणेण
भोयणपडिकूलयाए
इदियत्थ-विकोवणयाए

—स्थानांग ९

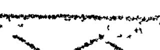
रोग होने के नौ कारण है—
अतिभोजन
अहित भोजन
अतिनिद्रा
अतिजागरण
मल के वेग को रोकना
मूत्र के वेग को रोकना
अधिक भ्रमण करना
प्रकृति के विरुद्ध भोजन करना
अति विषय सेवन करना।

परिशिष्ट









ग्रंथ व ग्रंथकार परिचय

(प्रस्तुत पुस्तक में जिन ग्रन्थों से शिक्षाएं संकलित की गई है उन ग्रंथों व ग्रंथकारों का संक्षिप्त परिचय ।

१ अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका

(आचार्य हेमचन्द्र सूरि वि० १२वी शती)

२ अनुयोगद्वार सूत्र

(आगमो मे चार मूल आगम मे अन्तिम आगम)

३ अमितगति-श्रावकाचार

(आचार्य अमितगति)

४ अभिधानचिन्तामणि कोश

(आचार्य हेमचन्द्र सूरि १२वी शती)

५ आचारांग सूत्र

(आगमो मे प्रथम अग आगम)

६ आचारांग चूर्णि

(आचार्य जिनदास महत्तर वि० ७वी शती)

७ आचारांग निर्युक्ति

(आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय) वि० ५-६ठी शती)

८ आत्मानुशासन

(आचार्य गुणभद्र, जिनसेन के शिष्य वि० ९-१०वी शती)



